• वर्ष ६६ • अंक २० • मूल्य ₹२०

अक्टूबर (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

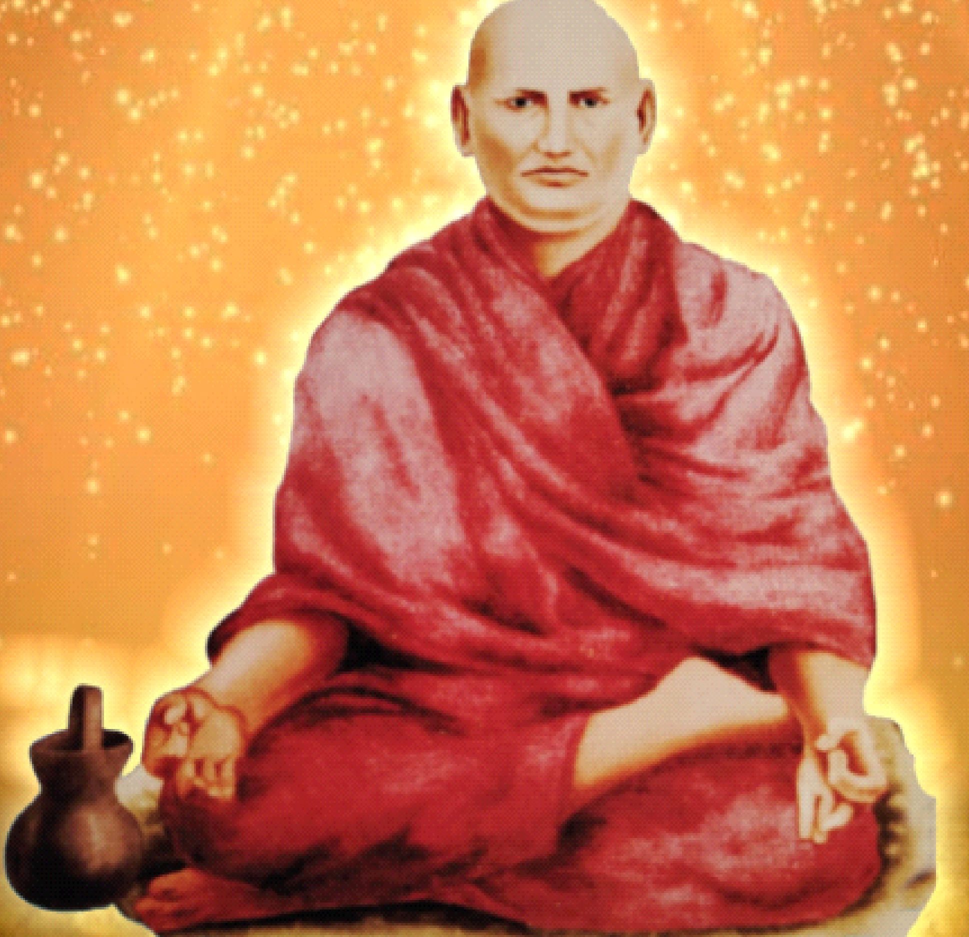

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान आचार्य डॉ. धर्मवीरजी की पुण्य तिथि पर आयोजित व्याख्यान माला के मुख्य वक्ता डॉ. जगदेव सिंह, सभा प्रधान श्री ओम् मुनि, पूर्व लोकायुक्त श्री सज्जन सिंह कोठारी और सभा की न्यासी श्रीमती ज्योत्सना धर्मवीर।

कार्यक्रम में उपस्थित आर्य जन।

गुरुकुल के शुभारंभ पर प्रविष्ट नए ब्रह्मचारी आचार्य सत्यनिष्ठ के साथ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ अंक : २०

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् - आश्विन शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
८२०९५८६१६६

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अक्टूबर द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. वैदिक/अवैदिक	सम्पादकीय	०४
०२. धर्मरक्षक, मिशनरी-इतिहास प्रेमी...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०५
* प्रवेश सूचना		०८
०३. स्वामी दयानन्द और उनका उद्देश्य	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	०९
०४. ज्ञान सूक्त-२०	डॉ. धर्मवीर	१५
०५. ''धर्मवीर'' प्रकाशस्तम्भ	श्री रामचन्द्र आर्य	१२
०६. डॉ. धर्मवीर जी की आठवीं...	डॉ. रामवीर	१४
* नवीन प्रकाशन पर ५० प्रतिशत की विशेष छूट		१८
०७. वैदिक राष्ट्र का स्वरूप...	डॉ. आशुतोष पारीक	१९
०८. बात बात में बात -1	श्री धर्मेन्द्र जिज्ञासु	२३
०९. ऋषिवर की सत्यनिष्ठा	श्री रामनिवास गुणग्राहक	२५
* आचार्य की आवश्यकता		२८
१०. दुकान (स्टॉल) आवंटन		२८
११. भव्य एवं दिव्य ऋषि मेला समारोह		२९
१२. संस्था की ओर से....		३१
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३३
* गुरुकुल सूचना		३४
१३. निवेदन		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वैदिक/अवैदिक ?

आर्यसमाज की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य वेद का प्रचार करना है। इसके संस्थापक ने वेद को लेकर कभी भी समझौता नहीं किया। आर्यसमाज के तीसरे नियम का अभिधेय ही वेद को सर्वोपरि मानते हुए तदनुसार आचरण करना है। इसीलिए आर्यसमाज अपने प्रचार को वेद प्रचार कहता रहा है। सप्ताह भर चलने वाले प्रचार कार्यक्रम का नाम ही वेद प्रचार सप्ताह कुछ वर्षों पूर्व तक प्रचलित रहा है, किन्तु आज स्थिति वैसी नहीं है। वेद प्रचार सप्ताह का स्वरूप कथात्मक हो चला है।

प्रचलित कथाओं में कथा के विशेषण रूप में '**वैदिक**' पद का प्रयोग किया जा रहा है। अत: विस्तार में जाने से पूर्व '**कथा**' तथा '**वैदिक**' इन पदों के अर्थ पर संक्षेप में कुछ विचार कर लेते हैं।

(i) वैदिक - विद् धातु से (वेदेषु विहित: इस अर्थ में) ठक् प्रत्यय होकर 'वैदिक' पद व्युत्पन्न होता है। इसका अर्थ है- वेद में विहित अथवा वेद में प्रसिद्ध।

(ii) कथा - सामान्यत: कथा का अभिप्राय है- कथन करना।

''प्रबन्ध कल्पनां स्तोकसत्यां प्राज्ञा: कथां विदु:।
परम्पराश्रया या स्यात् सा मताख्यायिका बुधै:।।''

अर्थात् प्रबन्ध रूप वाक्य समुदाय कथा है। इसमें अल्पमात्र सत्य होता है। जैसे महाकवि बाण विरचित 'कादम्बरी।' इसमें 'शूद्रक' राजा के वृत्तान्त के अतिरिक्त जरद्द्रविड़ धार्मिक, महाश्वेता आदि का वर्णन कवि का वाग्विलास मात्र है।

विचारणीय बिन्दु वेद प्रचार के नाम पर ''**वैदिक रामकथा**'' का प्रचलन/प्रचार करना है। समाज सदैव महापुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करता है। 'राम' भी महापुरुष हैं। उनका जीवन प्रेरणाप्रद है, उसके वर्णन अथवा चर्चा करने से किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? किन्तु उसे वैदिक कथन करना कहीं न कहीं इसलिए विचारणीय है, क्योंकि राम कथा को वैदिक कहने का अभिप्राय है कि यह वेद मूलक है अर्थात् वेद में इस कथा का मूल सन्दर्भ है, भले ही वह संक्षिप्त क्यों न हों। महर्षि के अनुसार वेद में किसी भी व्यक्ति (चाहे वह राजा अथवा ऋषि आदि कोई भी क्यों न हों) का वर्णन नहीं है, क्योंकि वेद ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। अर्थात् वेद में किसी व्यक्ति, स्थान/नगर, नदी आदि का वर्णन नहीं है। इनका वर्णन मानना पूर्णत अवैदिक है।

प्रसिद्ध कथावाचक रामभद्राचार्य तो स्पष्टत: वेदमन्त्रों में 'राम' का वर्णन घोषित कर रहे हैं। पतंजलि योगपीठ हरिद्वार में यह कथा होने वाली है। आर्यसमाज के मंच से भी यदि रामकथा को वैदिक घोषित कर प्रचार किया जाएगा, तो निश्चय ही पौराणिक रामभद्राचार्य आदि का मत पुष्ट होगा। साथ ही वेद में राम का इतिहास है- यह कथन भी समर्थित समझा जाएगा। साथ ही आने वाले समय में कृष्ण कथा आदि को भी वैदिक ही कहा जाने लगेगा।

दूसरे आर्यसमाज के मंच से की जाने वाली 'वैदिक रामकथा' के एकाधिक वीडियो प्रचारित हैं, जिनमें-

(i) 'श्री राम जयराम जय-जय राम'

(ii) 'हम हैं रामजी के, रामजी हमारे हैं'

(iii) 'सीताराम सीताराम सीताराम'

आदि का संकीर्तन (यह संकीर्तन आर्यसमाज के बैनर के साथ है।) ताली बजा और बजवाकर किया जाता हुआ स्पष्ट देखा जा सकता है।

क्या आनेवाले समय में राधे-राधे आदि संकीर्तन भी इन्हीं कथाओं के माध्यम से आनेवाला नहीं है।

हम भली प्रकार जानते हैं कि इस सबकी आलोचना निश्चय ही कुछ व्यक्तियों को अरुचिकर लगेगी। सर्वोच्च सभाओं को क्या इस पर विचार नहीं करना चाहिए? यद्यपि किसी भी सभा के अधिकारी की कोई प्रतिक्रिया अभी दृष्टिगत नहीं हुई है। यदि प्रबुद्ध आर्य अब भी न चेते तो शीघ्र ही लोकलुभावन नीति आर्यसमाज को तथाकथित सनातन धर्म (मूर्तिपूजक सम्प्रदाय) में विलीन कर देगी।

- डॉ. वेदपाल

धर्मरक्षक, मिशनरी-इतिहास प्रेमी टोली चाहिये

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

सद्धर्म प्रचारक, आर्यसमाचार मेरठ, आर्य मुसाफिर, भारत सुदशा प्रवर्तक आदि पुराने आर्यसामाजिक पत्रों की फाईलों का गहन अध्ययन करने वाले जानते हैं कि पुराने आर्यसमाजियों को खोजपूर्ण सैद्धान्तिक लेख लिखने पढ़ने का जनून था। ऐसे ही वैदिक धर्म पर विरोधियों विधर्मियों के निन्दापरक लेखों व साहित्य का गहन अध्ययन करके एक-एक आक्षेप का पठनीय उत्तर देने की पुराने आर्यों की तड़प बस देखे ही बनती थी। इस दृष्टि से प्राणवीर पं. लेखराम जी आर्यों के आदर्श व प्रेरणा स्रोत थे।

मैंने पं. लेखराम जी के बलिदान पर्व पर सन् १९५३ में कादियाँ के शहीदी महोत्सव के लिए पूज्य पं. रामचन्द्र जी देहलवी से सन्देश प्राप्त किया। उसमें आपने एक वाक्य इस भाव का लिखा था कि किसी भी आर्यविद्वान् मिशनरी के लिये पं. लेखराम कहलाना बड़े गौरव की बात है। तब श्री पं. धर्मभिक्षु जी आदि को उस युग का पं. लेखराम जाना माना जाता था।

अब मेरे देखते-देखते ऐसा युग आ गया है कि आर्यसमाज के पत्रों में विधर्मियों के लेखों के उत्तर में लेख लिखने वाले दो-तीन लेखक भी नहीं मिलते। अपने पाण्डित्य की डींग मारने वालें को निब घिसाते तो बहुत देखा है, परन्तु पचास वर्ष के लम्बे काल में विरोधियों के किसी लेख का वार प्रहार कभी भी उत्तर देते हुए एक पृष्ठ का लेख नहीं लिख सके।

देश-विदेश के साहित्यकारों पर अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं पर बड़े मूल्यवान् पठनीय ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं। जाने माने Distinguished विशिष्ट सहस्त्रों साहित्यकारों पर एक ग्रन्थ में संसार के सहस्त्रों विद्वान् लेखकों, नोबल पुरस्कार पाने वाले व्यक्तियों का जीवन परिचय मैंने पढ़ा। उसमें दो-चार भी आर्यपुरुषों का नाम न पाया। एक बड़ा ग्रन्थ आर्यलेखकों की कोटि के वैदिक विद्वान् का नाम न पाकर मेरा कलेजा फट गया।

ऐसा नहीं कि अब आर्यसमाज में पाँच दस शिरोमणि विद्वान् साहित्यकार ही नहीं रहे। इस युग में लीडर महिमा ऐसी हो गई है कि लीडर को महिमा मण्डित करते-करते आर्यसमाज निष्प्राण सा हो गया है। आर्यसमाज में मिशन के लिए समर्पित गुणियों को कौन पूछता है? मैंने इस दिशा में कुछ प्रयास किया, परन्तु अपनों की संकीर्णता व द्वेष देखकर मैं पीछे हट गया।

अब इस स्थिति के उलट कुछ अनुप्राणित करने वाले इतिहास को ऋषिभक्तों की सेवा में रखा जाता है।

क्या आप जानते हैं?- आर्यसमाज के डेढ़ सौ वर्ष के इतिहास में दो-तीन व्यक्तियें के संघर्ष व पुरुषार्थ से पहली बार ही एक देशप्रेमी मुस्लिम साहित्यकार अलिफ़ नाज़िम जी ने आर्यसमाज के स्कॉलर, महाकवि देशभक्त दुर्गा सहाय जी 'सरुर' के जीवन व काव्य पर लगभग नौ सौ पृष्ठ का शानदार ग्रन्थ प्रकाशित करवाया है। यह विशुद्ध आर्यसमाजी ग्रन्थ हिन्दी व उर्दू में प्रकाशित प्रसारित हुआ है। बठिण्डा के प्रसिद्ध आर्य धर्मप्रेमी श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त एडवोकेट ने इस ऐतिहासिक सेवा के लिए लाखों रुपये व्यय किये हैं। मैंने इस पर लेखों व पुस्तकों में कई बार लिखा है, परन्तु आर्यसमाज में किसी सभा संस्था व नेता ने अब तक इस विषय में दो शब्द नहीं कहे। क्या अब वेद, ऋषि दयानन्द, गऊ, उपनिषद्, दर्शन, श्रीराम, कृष्ण, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम, लाला लाजपत राय तथा वैदिक सिद्धान्तों व इतिहास से आर्यसमाज का कुछ भी लेना-देना नहीं?

आर्यपुरुषो! जब गोराशाही ने लाला लाजपतराय जी को देश से निष्कासित करके माण्डले में बन्दी बनाया था। कोई देशबन्धु उनसे मिल भी नहीं सकता था। तब

मेरठ से यही सिरफिरा महाकवि दुर्गासहाय न जाने माण्डले जाने का मेरठ के किस समाज अथवा समाजी से किराया लेकर लालाजी से मिलने माण्डले जा पहुँचा। सरकार एक आर्यसमाजी को लाला जी से मिलने क्यों देती?

किसने आर्थिक सहयोग दिया?- मेरठ जाकर मैंने बहुत खोज की। किस आर्यसमाज ने अथवा आर्यसमाजी ने उसे माण्डले जाने के लिए धन दिया। बहुत रिकॉर्ड देखा, परन्तु कुछ पता न चल सका। आर्यो! इस इतिहास की देश में अब कौन चर्चा करता है? मैंने इतिहास तो खोद-खोद कर आपको दे दिया। अब इसकी सुरक्षा व प्रचार कौन करेगा? मैंने ५० वर्ष इस सेवा में दिये। मुझे सहयोग किसने दिया?

हा! एक लज्जाजनक घृणित पाप- हा! क्या यह लज्जाजनक घृणित पाप नहीं कि आर्यलेखक कोश में महर्षि के दुलारे प्यारे महाकवि दुर्गासहाय 'सुरुर' जी का नाम तक नहीं मिलता। उसका उल्लेख करने से लेखक को क्या मिलता? क्या हम भी उ.प्र. के मेरठ के उस देशभक्त सपूत, ऋषि के चरणानुरागी को अपने हृदय से निकाल फेंकें?

मनगढ़न्त गप्पों से इतिहास प्रदूषित करना निन्दनीय दुष्कर्म है। आर्यलेखक कोश ग्रन्थ के पृष्ठ ३४१ पर भारतीय महोदय ने यह लिखा है, महात्मा हंसराज ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। महात्मा हंसराज ग्रन्थावली छपने पर स्वामी सत्यप्रकाश जी को भ्रमित करके श्री विजय जी को कहलवाया गया कि जिज्ञासु ने इस ग्रन्थावली पर श्रम तो प्रशंसनीय किया है, परन्तु महात्मा हंसराज को पंजाब विश्वविद्यालय का स्नातक बताना बहुत भयंकर भूल है। श्री विजय जी से कहा, इस सम्बन्ध में मुझ स्वामीजी से बात करने को कहा। मैं अबोहर से इस विषय के इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थ लेकर आऊंगा फिर स्वामी जी से मिलूँगा।

मैं अगले सप्ताह ऐसे कई स्रोत लेकर स्वामी जी से मिला। स्वामी जी उन ग्रन्थों को देखकर गद्‌गद हो गये। इनकी दाल यहाँ न गली।

इन्हीं श्रीमान् ने दयानन्द सन्देश में लेख छपवाया कि नन्हीं वेश्या नहीं वैष्णव थी। मैंने ऋषि जीवन में उसे वेश्या लिखा है। इसे झुठलाया गया। प्रतापसिंह ने उसे राजभवनों से निकाला तो वह अपने निजी निवास वेश्याओं के मुहल्ला में आ गई। वहीं पर उसका निधन हुआ। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। मैंने कई प्रमाण देकर अपने लेख की पुष्टि कर दी। इसने न तो क्षमा मांगी और न खेद प्रकट किया। अपने एक मोटे पोथे में उसे वेश्या मानना व लिखना पड़ गया। ऐसे ही मेरे इस लेख को श्रीमान् ने झुठला दिया कि महर्षि जी ने अन्तिम वेला में नाई को मुण्डन आदि करवाने के पांच रुपये दिलवाये। यह लेख भी दयानन्द सन्देश में ही छपा।

मैंने आर्यसमाज के आरम्भिक काल के पत्रों में छपे लाला जीवनदास आदि के संस्मरणों के प्रमाण देकर अपने लेख की पुष्टि कर दी। ऐसे ही चित्तौड़ के गुरुकुल की स्थापना विषयक महर्षि जी के कथन का भी प्रमाण देकर भारतीय के लेख का प्रतिवाद कर दिया। परोपकारी मासिक के बीसवीं शताब्दी के आरम्भ का तथा महाराणा सज्जन सिंह की जीवनी का प्रमाण देकर अपने लेख की तो पुष्टि कर ही दी। श्री भारतीय को भी अपने ग्रन्थ में यही कुछ लिखना पड़ा। आर्यजगत् दिनांक ०१-१२-२०१९ के पृष्ठ चार पर भी श्रीमान् ने लेख लिखकर आपनी भूल का सुधार कर दिया। यह एक प्रशंसा योग्य कार्य किया। अपनी भूल के लिए, मनगढ़न्त कथन के लिये क्षमा मांगना, खेद प्रकट करना तो उस के बस की बात ही नहीं थी।

कौन रोक सकता है?- अपने आपको आर्यसमाज का सबसे बड़ा इतिहासकार घोषित करना व मानना यह श्रीमान् का जन्मसिद्ध अधिकार रहा। मेरे पास भी श्रीमान् का एक ऐसा पत्र है जिस में इस हिन्दी अध्यापक ने स्वयं को आर्यसमाज का सबसे बड़ा इतिहासकार लिखा है। ऐसा कहने से, लिखने से इसे कौन रोक सकता है?

मेरी विनती– आर्यसमाज के सिद्धान्त निष्ठ और मिशनरी भावना के सब सेवकों से यह विनती है कि आर्यसमाज के इतिहास की सजग होकर रक्षा करें। मूलराज के पश्चात् पचास वर्ष तक अजमेर से फिर इतिहास प्रदूषण का पाप होता रहा है। जिनकी इतिहास पर पकड़ है और जो प्रामाणिक इतिहास लिख सकते हैं वही इतिहास लिखें तो कुछ कल्याण होगा।

प्रकाश का जन्म– महाशय कृष्ण जी के लोकप्रिय साप्ताहिक प्रकाश का जन्म सन् १९०५ में हुआ था। इसकी फाईलें मैं प्रमाण स्वरूप दिखा सकता हूँ। श्रीमान् भारतीय जी ने पहले तो प्रचारित कर दिया कि प्रकाश का जन्म १९०६ में हुआ। फिर सन् १९०८ व १९०९ में प्रकाश आरम्भ किया गया, यह प्रचार कर दिया। परोपकारिणी सभा का इतिहास व मेरे द्वारा लिखित महाशय राजपाल जी की जीवनी पढ़ के देख लें। उसमें मैंने १९०५ ही लिखा था। भारतीय के प्रचार अभियान से विश्वनाथ जी ने सन् १९०८ व १९०९ भी उसमें कर दिया। प्रूफ मुझे कतई न दिखाये गये।

महाशय कृष्ण जी के बारे यह गप्प– १९०७ में लाला लाजपतराय जी के देश से निष्कासन के समय महाशय कृष्ण ने प्रकाश में जो सम्पादकीय लिखा उसे पढ़कर इंग्लैण्ड के एक पत्र में महाशय जी के विरुद्ध एक कड़ा लेख 'A Fiery Editor of Lahore' लाहौर का एक आग्नेय शीर्षक से सम्पादकीय छपा था। न जाने इस लेख के कारण श्री महाशय जी काल कोठड़ी में जाने से कैसे बच गये। श्री भारतीय ने इसे लेख का शीर्षक न समझ कर श्री महाशय जी को लन्दन से प्रदान की गई उपाधि प्रचारित कर दिया। परोपकारिणी सभा का इतिहास देखिये।

महाशय कृष्ण व सिन्ध सत्याग्रह– सन् १९४६ में सिन्ध में आर्यनेताओं ने सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के लिए सत्याग्रह किया, परन्तु पकड़े न गये। इनमें महाशय कृष्ण जी नहीं थे। भारतीय जी ने उस जत्थे में महाशय जी का नाम भी जोड़ कर इतिहास में झूठ घुसेड़ दिया। यह कोई धर्म कर्म नहीं है।

लाला लाजपत राय जी विषयक गप्प– लाला लाजपतराय का जीवन परिचय परोपकारिणी सभा के प्रदूषित इतिहास में पढ़िये। उन्हें बी.ए. एल.एल.बी. लिखा गया है। वह बी.ए. नहीं थे। न ही एल.एल. बी. थे। इस विषय में मैं और क्या लिखूँ? भारतीय जी ने उनके साहित्य के सम्पादक बनकर उनकी लाहौर से छपी जीवनी के सम्पादक पं. भीमसेन जी का नाम हटाकर स्वयं सम्पादक बन बैठे।

लाला चरणदास जी पुरी पंजाब सभा व परोपकारिणी सभा के भी एक माननीय अधिकारी थे। उन्हें देश विभाजन से पहले से जानता हूँ। वह कभी सागर पार गये ही नहीं। वह एक एडवोकेट अवश्य थे। इतने झूठ गढ़ने की आवश्यकता क्या थी?

महात्मा आनन्द स्वामी सन् १८८७ में अपना जन्म बताया करते थे। इन्होंने रणवीर की पुस्तक पढ़कर उनका जन्म सन् १८८३ का मानकर महर्षि की बलिदान की घटना से जोड़ने का चमत्कार कर दिखाया।

मैंने पंजाब विश्वविद्यालय से सन् १९६१ में एम.ए. किया था। भारतीय लिखते हैं कि मैंने हिसार से एम.ए. पास किया। यह झूठ गढ़ने की क्या विवशता थी?

आर्यलेखक कोश के पृष्ठ ३३७ पर आप लिखते हैं कि पं. नरेन्द्र जी के पिता की निज़ाम ने मनसबदारी छीन ली। यह तो विशुद्ध गप्प है। पं. नरेन्द्र जी की जीवनी पढ़ लीजिये। पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री आर्य सत्याग्रह हैदराबाद के आरम्भ होने से पहले ही श्यामभाई की प्रेरणा से हैदराबाद के लिये शोलापुर चले गये। वहाँ से निकलने वले सब आर्यसामाजिक पत्रों का आपने ही सम्पादन किया। आपको सत्याग्रह करने की तो आर्यनेताओं ने अनुमति ही न दी। यह मिथ्या कथन है कि आप सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। हुतात्मा वेदप्रकाश पर बलिदान के समय पहला गीत आप ही ने लिखा था।

हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में आप सारे परिवार को, गोद में जो बच्चा था, वह भी माँ के साथ जेल गया था। प्रिय दयानन्द बड़ा पुत्र भी अलग से जेल गया। आर्यसमाज के इतिहास की यह घटना अद्‍भुत प्रेरक है। इसे आपने पण्डित जी के परिचय में देना न जाने क्यों उचित न जाना? पण्डित जी पर मेरा ३०० पृष्ठ का जीवन चरित्र आपके पास था फिर भी भारतीय जी तप त्याग, अग्नि परीक्षा की घटना देने से बचते हैं।

गुणों की खान बलिदानी पं. त्रिलोकचन्द्र जी पर जितनी पंक्तियाँ भारतीय महोदय ने गार्गी माथुर पर लिखी हैं उतनी ही शास्त्रार्थ महारथी, गवेषक लेखक अनुभवी वेदोपदेशक पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री पर लिखी हैं। बलिहारी इस सबसे बड़े इतिहासकार पर।

कल्पित इतिहास लिखने का व्यसन- श्री बाबा छज्जूसिंह जी आर्यसमाज के ऊंचे विद्वान् और अंग्रेजी के लेखक थे। आपकी अंग्रेजी की एक पुस्तक की विस्तृत भूमिका लाला द्वारकादास जी ने लिखी है। भारतीय जी लिखते हैं कि लाला जीवन दास जी ने लिखी। हम झूठ को सच मान लें?

मुंशी इन्द्रमणि का निधन- मुंशी इन्द्रमणि जी का निधन सन् १८९१ ई. में हुआ। पं. लेखराम जी ने उन्हें श्रद्धाञ्जलि भेंट की। मिर्जा कादियानी के ग्रन्थों में भी उनकी मृत्यु की चर्चा है। श्री भारतीय ने गोविन्दराम हासानन्द से छपी जोधपुर के प्रतापसिंह के गुणगान वाली पोथी में उनका निधन प्रत्येक संस्करण में सन् १९२१ ही लिखा है। बलिहारी इस इतिहास के।

लाला देवीदास डस्का- आप डस्का के निवासी थे। ग्राम में नहीं जन्मे थे। आपने संस्कार विधि का उर्दू अनुवाद किया। मैंने अपनी पाण्डुलिपि में उसकी चर्चा की थी। यह पाण्डुलिपि भारतीय जी ने मुझसे मांग ली। वह क्रमशः परोपकारी में मैं दे रहा था। सोचा! चलो इकट्‍ठी भेज देता हूँ। न तो मुझे लौटाई और न मेरी लेखमाला चलाई। इसमें वर्णित संस्कार विधि का यह अनुवाद देशभक्त लाला पिण्डीदास जी ने नहीं छपवाया था। उसका नाम भी 'संस्कार दीपक' नहीं था। यह विशुद्ध झूठ इनके लेखक कोश पृष्ठ ११५ पर छपा है।

यह अत्यन्त खूबसूरत गप्प गढ़कर लेखककोश में परोस दिया है। इसकी दो भूमिकायें साथ छपीं, यह तो पौराणिक कहानियों को भी मात देने वाला गपोड़ा जोड़ा है। न तो महात्मा मुंशीराम जी ने इसकी भूमिका लिखी थी और न ही श्री ताराचन्द गाजरा ने इसकी लम्बी भूमिका लिखी है और न दी देशभक्त आर्यविद्वान् लेखक लाला पिण्डीदास जी ने इसे १९१५ में लाहौर से छापा था।

आर्यसमाज में इतिहास की इस युग में हुई दुर्गति दिखानी थी। कुछ आर्यसमाज सीखना चाहे तो सीख ले। इस विषय पर चार सौ पृष्ठ का ग्रन्थ लिखा जा सकता है। कलेजे पर पत्थर रखकर इतिहास की ये गप्पें लिखनी पड़ी हैं।

वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर, पंजाब।

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की निःशुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्रः ८८९०३१६९६१**

स्वामी दयानन्द और उनका उद्देश्य

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

प्रियवर पाठक! आप महाशयों ने श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का नाम तो अवश्य सुना होगा। उनके द्वारा रचित वेदभाष्य व अन्यान्य पुस्तकों को भी कदाचित् देखने का अवसर मिला होगा। यदि आप आर्यसमाज के सभासद् हैं तब तो आपको उनके जीवन-वृत्तान्त की भली प्रकार जानकारी होगी, परन्तु इतने पर भी क्या आपने श्री स्वामीजी के मुख्य उद्देश्य या सदुपदेशों का प्रयोजन यथोचित समझ लिया है? मुझे जहाँ तक अनुभव है और सोलह वर्ष से सामाजिक जीवन व्यतीत करके स्वानुभव से मैंने जो परिणाम निकाला है, वह यह है कि मुझे ऐसे मनुष्यों को संख्या अति न्यून दृष्टिगोचर होती है, जो उस महर्षि के आशय को भली-भाँति समझे हों। बहुत-से लोग स्वामीजी को भारतवर्ष का पक्षपाती समझते हैं, बहुत-से उन्हें देश-हितैषी मानते हैं, कुछेक उन्हें हिन्दू-रिफॉर्मर ठहराते हैं, अनेक महाशय उन्हें देशोद्धारक मानते हैं, परन्तु मेरी सम्मति में एक महात्मा संन्यासी के विषय में ऐसे शब्द कहना मानो उसे उसके धर्म से पदच्युत कर देना है, क्योंकि संन्यासी का धर्म सारे संसार का उपकार करना और अपने-पराये को समान दृष्टि से देखना है। यदि स्वामी दयानन्द केवल भारतवर्ष के हितैषी थे तो अन्य देशों के वे अवश्य अशुभचिन्तक होंगे जो सर्वथा मिथ्या है। यदि वे हिन्दू-रिफॉर्मर थे तो हिन्दूजाति से प्रीति और अन्यों से घृणा करते होंगे, ये बातें लोगों ने अपनी अल्प बुद्धि से मान ली हैं। वास्तव में स्वामी दयानन्द एक सच्चा संन्यासी था और सारे संसार के प्राणिमात्र को सुख पहुँचाना उसने अपना कर्त्तव्य समझा था।

प्यारे मित्रो! यह तो आपको ज्ञात है कि आदि में सारे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था, परन्तु शनैः शनैः समय के उलट-फेर ने इस वैदिक धर्म को भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित कर दिया। इसका प्रमाण यह है कि वैदिक धर्म के सर्वोत्तम सिद्धान्त अर्थात् यज्ञ-अग्निहोत्र को हम प्रत्येक देश तथा धर्म की मूल पुस्तक में विद्यमान पाते हैं और पाँच सहस्त्र वर्ष से पहले संसार में कोई मत, पन्थ, सम्प्रदाय उदाहरणार्थ भी नहीं था। यवन मत १३०० वर्ष से, ईसाई मत १९०० वर्ष से, यहूदी मत ३५०० वर्ष से, पारसी मत ४५०० वर्ष से हैं, और पारसियों से पूर्व कोई मत नहीं पाया जाता। इस विवेचन से प्रत्यक्ष विदित है कि ये सारे मत वैदिक धर्म के बिगड़ने से उत्पन्न हो गये। इसके अतिरिक्त जिस समय हम चरकसंहिता में इस श्लोक को देखते हैं-

वाह्लिका पलवाश्चीना शुलीका यवनाः शकाः।
माषगोधूम मृद्वीकाः शास्त्रवैश्वानरोचिता।।

अर्थात् महात्मा अत्रि ऋषि ने बलख, ईरान्, चीन, अरब, यूनान तथा उसके पूर्वी विभागों में भ्रमण किया और वहाँ पर उन्होंने अंगूर, उड़द और गेहूँ के खानेवाले तथा शास्त्र के अनुकूल अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्य देखे।

इससे प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि वैदिक धर्म उक्त देशों में वर्त्तमान था। जब महाभारत-युद्ध में योग्य विद्वानों के नष्ट हो जाने से उसका प्रचार निर्बल हो गया तब प्रचार के न रहने से तथा धनादि की अधिकता से मनुष्यों में दुराचार फैलने लगा और राजा लोग निन्दित कर्मों में प्रवृत हो गये। ब्राह्मण जो उस समय जगद्गुरु कहलाते थे, वैदिक धर्म के प्रचार के न होने तथा आलस्य से अपने कर्त्तव्यों से प्रथम ही पतित हो चुके थे। वे भी राजाओं के सेवक हो गये और उनकी हाँ-में-हाँ मिलाने लगे। उस समय जब लोगों ने राजाओं से कहा कि आप यह क्या अधर्म करते हैं? और जब सारे देश में उनकी निन्दा होने लगी तब राजाओं ने अपने पुरोहित ब्राह्मणों से मिलकर इस निन्दा से बचने का उपाय किया और संसार में एक ऐसा मत चलाया जिसमें सारे दुराचार धर्म बन गये। इस मत का नाम वाममार्ग है। 'वाम' का अर्थ होता है 'उल्टा' अर्थात् उल्टा मार्ग फैल गया, जिसमें अधर्म की बातों को धर्म बलताना अर्थात् ईश्वर के स्थान पर

प्रकृति को मानना या विषय-सुख को धर्म बतलाना ही प्रत्यक्षरूप से वाममार्ग को उल्टा मार्ग बतला रहे हैं।

भ्रातृगण! इस वाममार्ग का मूल तैत्तिरीयशाखा है, क्योंकि उसके विषय में जो वृत्तान्त महीधरभाष्य में लिखा है, उससे प्रत्यक्ष विदित होता है कि उसी समय से वाममार्ग चला।

एक समय व्यासजी के चेले वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से किसी बात पर रुष्ट हो गये और उससे कहा कि मेरी पढ़ी हुई विद्या को छोड़ दे। याज्ञवल्क्य ने उसी समय विद्या का वमन कर दिया। तब वैशम्पायन ने अपने अन्य शिष्यों से कहा कि इसको खा लो। उन्होंने तीतर का रूप धारण कर उसे खा लिया, अतएव यह तैत्तिरीयशाखा बन गई। यह वृत्तान्त महीधर ने अपने यजुर्वेदभाष्य की भूमिका में लिखा है। इस लेख से तैत्तिरीयशाखा की उत्पत्ति ज्ञात हो गई और याज्ञवल्क्य ऋषि के समय का पता लग गया।

पाठकवृन्द ! यह गाथा वाममार्ग के प्रारम्भ की है, क्योंकि वाममार्गियों में बड़ा सिद्ध वही कहलाता है जो वमन का भक्षण कर ले। इस गाथा में तीतर बनना इस बात को सिद्ध करता है कि उस समय वाममार्ग का विशेष प्रचार नहीं हुआ था और न इस प्रकार के सिद्ध उत्पन्न हुए थे और जितने सूत्र आजकल दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें पशुयज्ञ और मांसादि का विधान है, उनमें अधिकतर तैत्तिरीयशाखा, तैत्तिरीय-आरण्यक और तैत्तिरीयब्राह्मण के दिये जाते हैं, जो वाममार्ग के समय में निर्मित हुए हैं और इन्हीं पुस्तकों में यज्ञ में पशु हिंसा बतलाई है, अन्यथा पूर्वकाल में तो यज्ञ में हिंसा करना महापाप था जैसा ऋग्वेद में लिखा है-

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषुगच्छति।। ऋ. १/१/१४

अर्थात् हे ज्ञानस्वरूप अग्नि नामक परमात्मन्! तेरा जो हिंसारहित यज्ञ सारे संसार में व्याप्त हो रहा है, वही यज्ञ इस स्थान से देवताओं को जाता है।

बहुत महाशयों को इसमें शंका होगी, परन्तु वेद में कम-से-कम सौ स्थानों पर यज्ञ को हिंसारहित बतलाया है और इस मन्तव्य की पुष्टि में अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, अर्थात् जिस समय विश्वामित्र ने यज्ञ किया था उस समय राक्षस लोग उनके यज्ञ में मांस-विष्ठादि डालकर उसे अपवित्र करते थे। यदि यज्ञ में हिंसा का निषेध न होता तो विश्वामित्र स्वयं क्षत्रिय होकर श्री रामचन्द्रजी को सहायतार्थ कभी न बुलाते, क्योंकि यज्ञ में क्रोध करना पाप है और हिंसा बिना क्रोध के हो नहीं सकती। इसमें और भी प्रमाण हैं।

प्रिय पाठक। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पारसियों को जब अग्निहोत्र का उपदेश हुआ था, अर्थात् जिस समय व्यास व जरदुश्त का शास्त्रार्थ हुआ और व्यासजी ने उपदेश किया उस समय केवल सुगन्धित, बलवर्धक और रोग को दूर रखनेवाले पदार्थों का हवन होता था, जैसा कि पारसियों के रिवाज से प्रकट होता है, परन्तु वाममार्ग फैल जाने के पश्चात् जो आर्यवर्त्त से अन्य देशों में शिक्षा पहुँची वहाँ यज्ञ के स्थान में पशुवध का प्रचार हो गया। जिस समय इस प्रकार चारों ओर वेदों के अर्थों का अनर्थ करके वेद के नाम से बहुत-सी वाममार्गीय पुस्तक और सूत्र बनाये तो सारे संसार में वेदों की निन्दा होने लगी जैसाकि चारवाक ने लिखा है-

त्रयो वेदस्य कर्त्तारः भण्डधूर्तनिशाचराः।।

अर्थात् तीनों वेदों के बनानेवाले भाण्ड, धूर्त और राक्षस हैं।

जब वेदों की इस प्रकार निन्दा होती थी तब एक राजा की लड़की जिसको वैदिक धर्म में अति प्रीति थी, शोक से यह कह रही थी-

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।।

अर्थात् मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदों का उद्धार करेगा?

उसकी इस बात को सुनकर कुमारिल भट्टाचार्य को इस बात का विचार उत्पन्न हुआ और उन्होंने उत्तर दिया-

मा चिंत्य वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले।।

अर्थात् हे धर्मानुरागिणि! कुछ चिन्ता मत कर। वेदों के उद्धार के लिए भट्टाचार्य विद्यमान है और कुमारिल

भट्टाचार्य ने मीमांसा-वार्त्तिक बनाकर यज्ञों का नियम ठीक करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे पूर्णरूप से कृतकार्य न हुए।

जब वाममार्ग के प्राबल्य ने देश में दुराचार फैला रखा था, उस समय कपिलवस्तु के राजा शाक्यसिंह गौतम को उसे दूर करने का विचार पैदा हुआ। उन्होंने राज्य को छोड़ तप करना आरम्भ किया। जब अच्छी प्रकार ज्ञान हो गया तो उन्होंने हिंसक यज्ञों का खण्डन करना प्रारम्भ किया और उस समय जो वाममार्गी ब्राह्मण सब जातियों को दास बनाकर अधर्म में चला रहे थे, उनके वर्णाश्रम का भी खण्डन आरम्भ किया। बुद्ध की शिक्षा बहुत कुछ वैदिक धर्मानुकूल थी, परन्तु उस समय वाममार्ग के अनर्थों से जो कुछ वैदिक धर्म के नाम पर हो रहा था, वह सर्वथा भ्रष्ट व विरोधी था। उस समय वाममार्गी ब्राह्मणों ने बौद्धमत के शास्त्रार्थ में वेदों के प्रमाण, अर्थात् उसी वाममार्गी तैत्तिरीय शाखा के प्रमाण देने आरम्भ किये। महात्मा बुद्धदेव जो संस्कृत के विद्वान् तो थे नहीं, इस कारण स्वयं तो वेदार्थ विचार न सकते थे, दूसरे, उस समय वेदों के अनुकूल पुस्तकें भी कम प्राप्त होती थीं जिससे उन्हें भली-भाँति शिक्षा होती। जब उन्होंने देखा कि वेदों के जमघटे को साथ लेकर वाममार्ग को दूर नहीं कर सकते और न संसार का उपकार कर सकते हैं तो उसका उपाय उन्हें यही सूझा कि वेद को मानना छोड़ दें और जहाँ तक हो सके इन हिंसा करनेवाले यज्ञों को बन्द करने के लिए उनके प्रचारक और उनकी जड़- वेदों के प्रचार-प्रसार को कम करने का प्रयत्न करें, अतएव उन्होंने शूद्रों से कार्य आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों में सारे भारतवर्ष में हलचल मच गई। जब विरोधियों ने देखा कि गौतम वेदों को नहीं मानता तो उन्होंने उससे कहा कि वेद ईश्वरकृत हैं।

बुद्धदेव ने उत्तर दिया कि हम ऐसे ईश्वर को भी नहीं मानते, जिसने ऐसी पुस्तकें बनाई हों, जिनमें हिंसा करने का उपदेश हो। अस्तु, इस प्रकार महात्मा बुद्धदेव धर्म के एक हिस्से को अपने मन्तव्यानुसार विषयुक्त समझकर उससे पृथक् हो गये और शेष भाग का प्रचार करने लगे। जब इस प्रकार से ज्ञान का मुख्य भाग अर्थात् जीव, प्रकृति, ईश्वर-इन तीन में से ईश्वर निकल गया और शेष दो-तिहाई धर्म अर्थात् जीव और प्रकृति का प्रचार होता रहा।

प्यारे मित्रो। इस त्रुटि को पूरा करने के लिए स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ब्रह्म की सिद्धि के लिए कटिबद्ध हुए और सारे देश में भ्रमण कर बौद्ध मत का खण्डन किया और जहाँ तक हो सका अपना सारा समय ब्रह्मसिद्धि में लगाया, क्योंकि उस समय तक मनुष्यों में प्रकृति और जीव के होने के संस्कार तो विद्यमान थे, केवल ब्रह्म की कमी थी और ब्रह्म को जीव और प्रकृति को छोड़कर दूसरे किसी स्थान में दिखलाना कठिन था, इसलिए उन्होंने प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म को दिखलाना शुरू किया और षट् पदार्थ अनादि बतलाकर पाँच को सान्त बतलाया। अभी महात्मा शंकराचार्य को अपना पूरा सिद्धान्त दिखलाने का अवसर मिला ही नहीं था, देश के दुर्भाग्य से वह भारत का भानु इस असार संसार से चलता हुआ, परन्तु जितना काम इस महात्मा ने किया उससे ज्ञात होता है कि यदि इस ऋषि को दस वर्ष तक और जीवित रहने का अवसर मिलता तो ये भारत का उद्धार कर देते और वैदिक धर्म को महाभारत के पश्चात् जो हानि पहुँची थी, उसकी पूर्ति हो जाती। फिर भी २२ वर्ष की अवस्था से ३२ वर्ष की अवस्था तक इस ब्रह्म-प्रचारक ने सर्वत्र सामान्यतया और आर्यवर्त्त में विशेषतया ब्रह्म को फैला दिया।

भ्रातृवर्ग! महात्मा शंकराचार्य के पश्चात् उनके चेले यद्यपि बड़े-बड़े पण्डित हुए, जिन्होंने अद्वैतवाद को सिद्ध करने के लिए सहस्रों नये प्रमाण गढ़े और सैकड़ों पुस्तकें लिख डालीं, परन्तु वे वैदिक धर्म को उस मूल तत्त्व से बहुत दूर ले गये, अर्थात् उन्होंने प्रकृति और जीव के अस्तित्व से बिलकुल इन्कार कर दिया और षट् पदार्थ अनादि मानकर पाँच को अन्तवाला बतलाने के मन्तव्य को बिलकुल न समझा। महात्मा शंकराचार्य का तो यह सिद्धान्त था कि जो वस्तु उत्पन्न होती है वह अनित्य है और जो उत्पत्ति से रहित है वह नित्य है।

शेष भाग अगले अंक में.........

डॉ. धर्मवीर जी की पुण्यतिथि पर विशेष

प्रकाशस्तम्भ

- श्री रामचन्द्र आर्य

महर्षि दयानन्द जी का जीवन एक बौद्धिक संघर्ष का जीवन है वह अपने बनाए आर्यसमाज के चतुर्थ नियम- ''सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'' का अपने जीवन व्यवहार द्वारा एक सर्वाधिक उज्जवल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उन्हीं के एक शिष्य आर्यसमाज के एक जाज्वलयमान नक्षत्र थे- ''डॉ. धर्मवीर।'' उन्होंने महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण करते हुए जीवन के अनेक क्षेत्रों में उन्नति के अनेक शिखरों को छुआ। आज जब वो हमारे मध्य में नहीं है उनकी कमी बहुत गहराई से अनुभव होती है। धर्मवीर जी जैसा व्यक्तित्व मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, जिस पक्ष से भी विचार करें उनमें हमें एक विलक्षण व्यक्ति दिखाई देता है। मनुस्मृति का एक श्लोक है-

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञान मिन्द्रियाणां च संयमः।
धर्म क्रियात्म चिन्ता च निःश्रेयस करं परम्।।

(१२/८३)

अर्थात् वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, धर्माचरण, आत्मावलोकन ब्राह्मण को मोक्ष का अधिकारी बना देते हैं। वेदाभ्यास से व्यक्ति ज्ञानवान बनता है, ज्ञानमय तप के द्वारा सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि होती है इन्द्रियजयी व्यक्ति ही पूर्ण अहिंसक हो सकता है, निश्चिन्त होकर धर्माचरण कर सकता है, वह नियमित आत्मालोचन करते हुए अपने आन्तरिक दोषों पर विजय प्राप्त कर लेता है। ऐसा ही व्यक्ति हमें आचार्य धर्मवीर जी में दृष्टिगोचर होता है।

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर में प्रारम्भिक शिक्षा एवं व्याकरण के अध्ययन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के अनन्तर गुरुकुल के मुख्य द्वार पर उत्साह उमंग से भरपूर किन्तु हृदय में थोड़ा सा अवसाद लिए विचारमग्न थे कि आचार्य रामप्रसाद वेदालङ्कार (उपकुलपति गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार) ने पीठ थपथपाते हुए पूछा- ब्रह्मचारी क्या सोच रहे हो? उत्तर मिला- ''आचार्य जी! अभी तो विद्या को आगे बढ़ाना चाहता हूँ। सिद्धहस्त वैद्य बनने की मेरी इच्छा है।''

''तो चलो मेरे साथ गुरुकुल काङ्गड़ी।'' आचार्य रामप्रसाद जी ने कहा। सुनकर अवाक् रह गये धर्मवीर। अपनी व्यथा किसी पर प्रकट करना सीखा ही नहीं था। रामप्रसाद जी ने फिर पूछा- ''क्या सोच में पड़ गये ब्रह्मचारी?'' उत्तर मिला आचार्य जी मेरे पास तो मार्ग व्यय के नाम पर एक पैसा भी नहीं है। आप स्वामी ओमानन्द जी के सर्वप्रिय शिष्य थे, चाहते तो उनसे माँग सकते थे, पर वह उनके स्वभाव में नहीं था। रामप्रसाद जी ने कहा- ''तुम्हें उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'' ये कहकर रामप्रसाद जी ने ब्रह्मचारी धर्मवीर जी के भोजन, आवास एवं शिक्षा आदि का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया।

डॉ. धर्मवीर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन होना अभी शेष है। उनसे संसार का कितना उपकार हुआ और होगा इसमें आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार (उपकुलपति गु. का. वि. वि.) का अवदान का मूल्याङ्कन भविष्य के इतिहासकार कर पायेंगे। ब्रह्मचारियों को दिया गया सहयोग ही भविष्य के उज्ज्वल इतिहास का निर्माण करता है। यदि नयनसुख जड़िया का चार आने मासिक का सहयोग नहीं होता तो दयानन्द क्या होते नहीं कहा जा सकता है। मनु जी के कथन की एक-एक बात धर्मवीर जी के जीवन में चरितार्थ होती है। आपने गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय से आयुर्वेदाचार्य और पंजाब विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। गुरुकुल

काङ्गड़ी में आयुर्वेद का अध्यापन किया। डी.ए.वी. कॉलेज अजमेर में संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे। इस सम्पूर्ण अवधि में और यावज्जीवन उनका वेदाध्ययन एवं वेदाभ्यास का कार्य सतत् प्रवहमान रहा। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी थी मार्ग में चलते-चलते भी उनके अध्ययन का क्रम चलता ही रहता था। दर्शन, उपनिषद् आदि मानक ग्रन्थों को उन्होंने अपने आवास केसरगंज से चलकर ऋषिउद्यान तक के अपने नियमित प्रात: भ्रमण की अवधि में कण्ठस्थ कर लिया था। चिन्तनशील तो वो थे ही संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था इसका अध्ययन का प्रभाव इनके लेखन में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

वेदाभ्यासी का तपस्वी होना सोने पर सुहागे के समान है। धर्मवीर जी निस्पृह तपस्वी साधक थे। ऐसा लगता है मिथ्या दर्प और अहंकार उन्हें छू भी नहीं गये थे। उन दिनों ऋषि उद्यान के पूरे परिसर में खुर्पी हाथ में लेकर उन झाड़ियों को जड़ मूल से उखाड़ने का काम प्रारम्भ कर देते थे। पूछने पर बोले- बीज आने से पहले इन्हें निकाल देना है जिससे फिर कभी यहाँ काँटेदार झाड़ियाँ न उगे, मैंने कहा- पण्डित जी! सेवकों को इस काम पर लगा देते, बोले- अरे उनके पास पहले ही बहुत काम है। उन दिनों ऋषि उद्यान एक जंगल की तरह था, सरस्वती भवन के अतिरिक्त जो कुछ भी ऋषि उद्यान में था वह सब खण्डर ही था। योजनायें बनाते रहते थे, उनके कार्यान्वयन का उपाय सोचते रहते थे। उस समय सभा की स्थिति यह थी कि एक-एक पैसे के खर्च के लिये सोचना पड़ता था किन्तु धुन के धनी धर्मवीर ने सोच लिया तो कर दिया। लेखराम भवन का निर्माण कार्य पूरा हो चुका था। मॉरीशस के एक धनी-मानी विद्वान् ने इच्छा प्रकट की थी कि सभा का अपना एक अनुसन्धान भवन होना चाहिए, इसमें डेढ़ करोड़ रुपये देने का वायदा करके पचास लाख दे भी दिये। कार्य आरम्भ भी हो गया उधर से दबाव आया कि अमुक व्यक्ति से कार्य कराइये। इधर से उत्तर मिला- जिस व्यक्ति से हम कार्य ले रहे थे, वह परीक्षित है, निष्ठावान् है अब हम उसको नहीं छोड़ सकते। उन्होंने कहा- ''हम पैसे नहीं देंगे।'' इधर से स्वाभिमान बोल उठा- ''महाशय जी! समाज के काम समाज से होते हैं।'' और सबने देखा कि जिस अनुसन्धान भवन की रूपरेखा डेढ़ करोड़ रूपये को लेकर बनाई गई थी, जब उसने भव्य आकार धारण कर लिया तो उस पर साढ़े छह करोड़ रुपये खर्च हो चुके थे। ज्ञान मय तप से ज्ञान आत्मसात् होकर व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार आता ही है। ज्ञान के विषय में गीता में कहा गया है- 'तत्स्वयं योग सं सिद्धः कालेनात्मनि विन्दति' वह ज्ञान कर्म में परिणत होता हुआ आत्मा में स्थापित हो जाता है तब व्यक्ति में पवित्रता आती है ज्ञान जैसे पवित्र करने वाली और कोई वस्तु नहीं होती। यही धर्मवीर में भी हो रहा था। अजमेर में नगर आर्यसमाज को अदालत में मनोरंजन संघ (Recteation Club) घोषित कर दिया गया था। उसमं केवल कॉलेज के कर्मचारियों अथवा प्रधान के कृपापात्रों को सदस्य बनाया जाता था। भावुक हृदय वाले धर्मवीर से यह सहन नहीं हुआ। वह आर्यसमाज के प्रधान पद के प्रत्याशी बने, एक वोट से हार गये। परिणामस्वरूप कॉलेज की सेवा से निलम्बित कर दिये गये। घर में रोटी के लाले पड़ गये, किन्तु कभी किसी ने उनको म्लानभाव मुख से देखा न ही कभी उन्होंनें किसी से याचना की। अपितु सभा के कार्य में और अधिक प्राणप्रण से समर्पित हो गये। एक दिन संयोग से मैंने उनका निलम्बन पत्र देखा, मैंने कहा- ''आचार्य जी! ये निलम्बन पत्र तो नहीं लगता, अभिनन्दन पत्र लगता है।'' इतना होने पर भी निर्दोष होते हुए भी निलम्बन की मार झेलने वाले आचार्य में निलम्बन कर्ता के प्रति कटुता का भाव एक बार भी नहीं आया। जब ज्ञान आत्मसात् हो जाता है तो दोष स्वत: चले जाते हैं। अपने व्यवहार के गुण दोष व्यक्ति को स्पष्ट दिखाई दे जाते हैं। सोनीपत नगर आर्यसमाज के उत्सव पर आये हुए थे उनको एक

कक्ष में ठहराया गया। एक अन्य विद्वान् के उसी कक्ष में ठहरने की इच्छा जताने पर प्रधान जी ने आचार्य जी से बड़े कक्ष में ठहरने का निवेदन किया। जिसमें चार ब्रह्मचारी पहले से ठहरे हुए थे। आर्यसमाज के प्रति पूर्ण समर्पित आचार्य जी ने सहज भाव से मुस्कुराते हुए इसे स्वीकार कर लिया और मुस्कुराते हुए बोले- "हाँ! उनके लिए यही स्थान उचित है।"

आप छोटे से छोटे कार्यकर्त्ता को भी पूरा सम्मान देते थे। मैं कालेड़ा में माता जी की चिकित्सा के लिए गया था। अकस्मात् एक दिन सायंकाल वहाँ के मुख्य चिकित्सक ने हमें वहाँ से चले जाने को कहा। माता जी की स्थिति उस समय बहुत बुरी थी, जब ऋषि उद्यान के द्वार पर स्थित भोजनालय की दीवार पर धर्मवीर जी भी बैठे थे। वाहन में बैठे हुए मैंने कहा- "फालसिंह जी किस कमरे में जाऊँ।" उन्होंने कक्ष का नम्बर बताया तो धर्मवीर जी की आवाज सुनाई दी- "अरे! रामचन्द्र जी" और वे गाड़ी के पीछे-पीछे भागे चले आये। माता जी की स्थिति देखकर बोले- यहाँ बहुत अच्छा डॉक्टर है, प्रातःकाल में आपके साथ चलूँगा। सहृदयता कुशलसंगठक का सबसे प्रमुख गुण होता है सबसे प्यार करना, कटुता किसी के प्रति न होना। यह गुण धर्मवीर जी में कूट-कूट कर भरे हुए थे। ऋषि उद्यान में गुरुकुल का आरम्भ उन्होंने किया। एक दिन बोले- "आर्यसमाज इसलिए उन्नति नहीं कर रहा है कि इसका कोई केन्द्र नहीं है। मैं ऋषि उद्यान और परोपकारिणी सभा को आर्यसमाज की केन्द्रीय सत्ता बनाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि परोपकारिणी सभा के सभी सदस्य गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक हों, इसके लिए में पूरा प्रयास भी कर रहा हूँ।" कहाँ तक गिनाया जाए धर्मवीर एक प्रकाशस्तम्भ है, उसका जीवन भावी पीढ़ियों के मार्ग को दीर्घ काल तक आलोकित करता रहेगा। आर्यसमाज को प्रतीक्षा रहेगी एक नहीं अनेक धर्मवीरों की।

गुरुकुल आर्ष कन्या विद्यापीठ,
नजीबाबाद, बिजनौर, उ.प्र.
फोन नं. ९४६६९४५५९६

डॉ. धर्मवीर जी की आठवीं पुण्यतिथि पर

- डॉ. रामवीर

धर्मवीर! प्रियमित्र! तुम्हारे
जाने के पश्चात् ,
कभी कभी स्मृतियों में जीवित
होते हो साक्षात्।

आठ वर्ष हो गए मित्रवर!
तुमको गए हुए,
ओ निष्ठुर! मित्रों को जग में
एकाकी कर गए।

यूं तो लोग कहा करते हैं
इस दुनिया को सराय,
क्षमा करें इस विषय में मेरी
किंचित् भिन्न है राय।

इष्ट मित्र के संग सराय भी
घर जितनी ही भाए,
और मित्र बिन सूना घर
जैसे खाने को आए।

एक काल वह था जो बिताया
हमने तुम्हारे साथ,
और आज तुम बिन रहता है
मन प्रायः नाशाद।

तुम थे तो सम्भव था करना
सब विषयों पे विचार,
कूपमण्डूकता का तुमने नहीं
होने दिया प्रसार।

हे देशभक्ति के अग्रदूत!
हे मानवता के पुजारी!
मन भारी हो जाता है जब
आती याद तुम्हारी।

86, सैक्टर 46, फरीदाबाद (हरि.) - 121010
चल. 9911268186

प्रवचनमाला-१४८

ज्ञानसूक्त - २०

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेण्वसमा बभूवुः।
आदध्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे दहश्रे।।

हम ज्ञानसूक्त की चर्चा कर रहे हैं। ज्ञान सूक्त का ऋषि बृहस्पति है और इसका देवता ज्ञान है। इस सूक्त में ज्ञान की प्राप्ति, लाभ, उपाय, प्रकार सबकी चर्चा है और जिस मन्त्र पर हम इस समय विवेचन कर रहे हैं, उसके बारे में पिछले प्रवचन में हमने देखा था कि ज्ञानेन्द्रियों के जो साधन हैं, वे किन-किन भूतों से किस-किस तरह का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसमें हमने एक बात देखी थी कि मन्त्र कह रहा है 'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः' अर्थात् ज्ञान के दो साधन हैं हमारे पास आँख और कान। हमने पीछे देखा था कि आँख और कान कुछ मिलकर करके ज्ञान प्राप्ति में सहयोग करते हैं। आधुनिक दृष्टि से इसे एक और तरह से भी देख सकते हैं- देखकर जो ज्ञान है, जिसका अन्तिम रूप पुस्तक है, हम पढ़ करके ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पढ़ना भी मूल रूप से देखना ही है। संकेतों को पहचानने को हम पढ़ना कहते हैं। अर्थात् एक वृक्ष को जब हम साक्षात् देखते हैं तब हम उसे देख रहे हैं, लेकिन उसके चित्र को देखते हैं तब भी हम 'देख रहे हैं' बोलते हैं। लेकिन जब अक्षरों में 'वृक्ष' ऐसा लिखा होता है, तब हम उसे 'देख रहे हैं' नहीं बोलते। तब हम उसे बोलते हैं हम 'पढ़ रहे हैं'। क्योंकि देखने में वस्तु का साक्षात् रूप दिखाई दे रहा था। पढ़ने में साक्षात् रूप नहीं दिखाई दे रहा है, किन्तु अक्षरों के पढ़ने से मस्तिष्क में रूप की रचना हो रही है। तो पढ़ने से जो अक्षर हैं वो जिस चीज के संकेत हैं या उनका जो अर्थ हे, वो अर्थ हमारे मस्तिष्क में प्रकट होने लगा है। तो ऐसे संकेतों को हम पढ़ना कहते हैं। मतलब जिन संकेतों से संकेतिक पदार्थ का बोध हो रहा है। वास्तव में तो यह भी देखना ही है, लेकिन वहाँ हमें 'वृक्ष' दिखाई नहीं दे रहा है। पहाड़ नहीं दिखाई दे रहा है, नदी नहीं दिखाई दे रही है, पर नदी कहने से नदी का बोध हो रहा है। पर्वत कहने से पर्वत का बोध हो रहा है। यह जो बोध कराने के कारण, जो संकेतों को हम देख रहे हैं, उन संकेतों को हम पढ़ना कहते हैं। तो पढ़ने उस अर्थ के वास्तविक रूप की प्रतीति होती है। इसिलए आँख से देखते हैं- आँख से वस्तु को देख रहे हैं, चित्र को देख रहे हैं, फिर अक्षरों को देख रहे हैं। लेकिन अक्षरों से रूप न दिखाई देकर रूप उसके अर्थ में दिखाई देता है। इसलिए देखना हमारे ज्ञान का प्रमुख साधन है। एक तो संसार को देखकर हम सीखते हैं, दूसरा हम पढ़कर सीखते हैं। तो हमें ऐसा लगता है जैसे शायद पढ़ना बाद की यीज है ओर देखना पुरानी चीज है। लेकिन इस पर विचार करेंगे तो ऐसा शायद नहीं लगे, क्योंकि जो वस्तु है उसका बोध हमें बहुत पहले से इसलिए है कि वस्त हर समय हमारे सामने नहीं रहती।

जब वस्तु सामने नहीं रहती तो उसका बोध हम शब्दों से कराते हैं। मान लीजिए वृक्ष मेरे सामने नहीं है तो वृक्ष बोलने से मुझे वृक्ष की प्रतीति होती है। तो जैसे शब्द के बोलने से 'वृक्ष' की प्रतीति हुई, शब्द के सुनने से वृक्ष की प्रतीति हुई, वैसे ही 'वृक्ष' अक्षर पढ़ने से भी वृक्ष की प्रतीति होती है। तो यह सारा जो तन्त्र है, ऐसा नहीं कह सकते कि अलग-अलग या क्रमशः विकसित हुआ है, क्योंकि जैसे बोलना जैसे सुनना, वैसे देखना। ते यह चीजें लगभग साथ आपको दिखाई देती हैं। यह एक दूसरे से बँधी हुई हैं भगवान् ने यदि कान पहले बनाए होते या आँख पहले बनाई होती तो हम कह सकते थे कि इसके विषय भी पहले के होंगे या इसके नहीं होंगे। लेकिन हम मनुष्य के रूप में जब उत्पन्न होते हैं तो हमारे समस्त साधनों के साथ होते हैं और जब हम समस्त साधनों के साथ उत्पन्न होते हैं तो उनके भौतिक विषय वो भी स्वाभाविक होंगे। तो इसलिए रूप जहाँ वास्तविक है, रूप जहाँ चित्र का है, रूप जहाँ सांकेतिक है, रूप जहाँ ध्वनि है तो उन सब में भी कुछ तारतम्य होना चाहिए। इसलिए जो बहुत सारे लोग कहते हैं कि लिपि बाद में बनी कि पहले बनी? तो जैसे वेद को श्रुति कहा, तो ऐसा लगता है जैसे कान से जुड़ी हुई बात हुई, लेकिन वेद को अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः भी कहा। मतलब वेद को जानने के लिए आँख और कान दोनों चाहिए। केवल सुनने से बात होती तो कान से होती और वेद, यदि देखने की बात है तो शब्द को देखा तो जा नहीं सकता। शब्द को तो सुना जा सकता है, लेकिन शब्द को देखने योग्य बनाना है तो उसके संकेत होंगे, उसकी लिपि होगी। इसी तरह से हमारे यहाँ शास्त्र में, जिसको हम खेती कहते हैं, संस्कृत में उसे कृषि कहते हैं और उसके लिए हमारे यहाँ, व्याकरण में एक धातु चलती है 'कृष् विलेखने।' अर्थात् कृषि जो करना है वो लिखना है। जैसे पृथ्वी पर लकीर खींचते हैं, लिखते हैं। तो कृषि शब्द यह बता रहा है कि लिखने का जो बोध है, यह हमारे लिए नया नहीं है। हम पुराने समय से इन लकीरों को बनाना जानते थे और लिखना कुल लकीरों का संकेत ही तो जानना है और क्या है? एक मित्र ने मुझे एक बहुत सुन्दर बात सुनाई वो कहने लगे कि एक प्रशासनिक अधिकारी थे, उनसे बात चल रही थी कि ऐसी जनसंख्या है, ऐसे साधन हैं अैर अमक काम के लिए कितन संसाधनों की, राशि की आवश्कता हेगी। तो वह भला आदमी जमीन पर लिखने लगा। उससे पूछा, भाई तू जमीन पर क्यूँ लिख रहा है, कागज पर लिख ले। वह बोला, अरे नहीं! मेरी आदत है जमीन पर लिखने की। मैं इसलिए इस पर जल्दी काम कर लेता हूँ उससे पूछा कि तुम्हारी जमीन पर लिखने की आदत कैसे बनी? तो उस व्यक्ति ने अपना इतिहास सुनाया। उन्होंने बताया कि वे जिस गाँव में रहते थे, वह बहुत गरीब गाँव था, आज से लगभग ५०-६० साल पहले और उस गाँव में एक पाठशाला खुली जरुर थी, कोई आता नहीं था। बड़े बुजुर्ग जानते थे कि यह छोटी सी झोंपड़ी बनी है यह पाठशाला की है। लेकिन न वहाँ कोई अध्यापक कभी आया, न कोई विद्यार्थी बना। एक व्यक्ति का कभी वहाँ तबादला हो गया और वह उस गाँव में अध्यापक बन कर आया। उसने गाँव वालों से पूछा कि यहाँ विद्यालय कहाँ है। तो जो बड़े-बुजुर्ग जानते थे उन्होंने कहा यह जो झोंपड़ी है, यही विद्यालय है। उस अध्यापक ने घंटी, मेज, कुर्सी, पुस्तक का पूछा तो उसे कहा यहाँ कुछ नहीं है, यहाँ कोई पहले कभी आया ही नहीं। अध्यापक ने कहा कोई बात नहीं, कल से पढ़ायेंगे। बच्चों से कहा कि स्लेट पट्‌टी या तख्ती कॉपी ले आएें। गांववालों ने कहा, देखिये पैसे खर्च करने की कोई बात यहाँ नहीं चलेगी। यहाँ किसी के पास भी पैसा नहीं है। अध्यापक बड़े उत्साही थे, कर्त्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने कहा, कोई बात नहीं, मैं अपनी व्यवस्था कर लूँगा। उन्होंने अपनी श्यामपट्‌टी बनाकर जैसे-तैसे व्यवस्था कर ली और बच्चों से कहा आप पढ़ने जरुर आ जाना, चाहे कुछ भी लेकर मत

आना और बच्चे आ गए। उन्होंने बच्चों से कहा कि अपने सामने की भूमि को ठीक-ठीक समतल कर दो और उसी पर उन्होंने उन बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाया। वे सज्जन कहने लगे कि मैंने अपने गाँव के विद्यालय में चौथी कक्षा तक जमीन पर ही लिखा और जमीन पर ही पढ़ा। आज भी मेरा अभ्यास जमीन का ही ज्यादा अच्छा है जमीन पर मैं आसानी से, बहुत सहज रूप से काम कर लेता हूँ।

तो बात है 'कृष् लिखने' की, धरती पर लिखना तो यह जो लिखना है, तो आज आप पत्थर पर भी लिखते ही तो हैं। आप लकड़ी पर लिखते हैं, धातु पर लिखते हैं। आप कागज पर लिखने को लिखना समझते हैं किन्तु भूमि पर लिखना, हमें लिखना नहीं दिखाई देता या लिखना नहीं लगता। इस दृष्टि से हम विचार करें तो ऐसा लगता है कि जैसे सबसे पहले हमने भूमि पर ही लिखना सीखा था और इसीलिए हम खेती कर पाए कि हम भूमि पर लिखना सीखे। यह कहता है कि जो लेखन है, यह कोई आधुनिक विद्या है, ऐसा नहीं है। हम समझ लेते हैं कि शायद श्रुति कहने से कि केवल सुनकर ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। लेकिन जब हम 'अक्षण्वन्त' कहते हैं तो आँख भी कहते हैं। तो हम वेद को देखते भी हैं और वेद को सुनते भी हैं। तो पुस्तक रूप में वेद को देखना तब तक नहीं हो सकता जब तक वो लिखित न हो। तो इस दृष्टि से एक प्रकार लिखने का अक्षरों का है, वेद का है और जहाँ तक संसार की बात है, वो देखने से सम्बन्ध रखता है। हमारे यहाँ साहित्य में एक बड़ी रोचक बात है। कहा है कि कोई व्यक्ति बहुत बुद्धिमान् तब बनता है जब उसके पास अपनी प्रतिभा हो और उस प्रतिभा को कोई मार्गदर्शन देने वाला हो, उससे उसके अन्दर कोई दक्षता प्राप्त हुई हो और दखता प्राप्त करने के लिए किसी ने बहुत अधिक परिश्रम किया हो, उस काम को बार-बार किया हो तो वो जो निपुणता है वो किस-किस प्रकार से प्राप्त होती है। आचार्य मम्भट्ट की एक पंक्ति बड़ी प्रसिद्ध हैत्र शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् काव्यज्ञ शिक्षया अभ्यासः इति हेतुस्तदुद्भवः। कहात है कि किसी के अन्दर कोई क्षमता पैदा करनी हो, कोई योग्यता पैदा करनी हो तो उसके पास तीन बातें होनी चाहिए। एक तो उसके अन्दर मौलिक होनी चाहिए, वो जन्म से उसके साथ आया हुआ होना चाहिए, वो है प्रतिभा जिसे यहाँ शक्ति कहा है। दूसरी जो चीज है वो निपुणता है वो है लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्। उसमें सबसे पहली चीज है, संसार को देखो। संसार को जो व्यक्ति जितना अधिक देखता है, देख सकता है, उसकी योग्यता उसका ज्ञान उतना ही अधिक होता है, बढ़ता है। इसलिए लोक देखो उससे आपके अन्दर निपुणता आती है। हमारे यहाँ संस्कृत साहित्य में कहा है कि चातुर्य के जो मूल हैं उन पाँच साधनों में 'देशाटन' पहला है। तो लोक और शास्त्र दोनों को बार-बार देखने से हमारे अन्दर ज्ञान की प्राप्ति होती है, संस्कार बनते हैं और तीसरी चीज कहता है कि किसी चीज को आप बार-बार करो। बार-बार अभ्यास करने से वो चीज प्रखर होती है, प्रबल होती है। इस दृष्टि से वेद कहता है 'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः।' अर्थात् वेद का ज्ञान कान से ही नहीं हुआ है बल्कि वेद का ज्ञान आँख से भी उतना ही होता है जितना कान से। कान से जहाँ गुरु की वाणी सुनी है, वैसे ही आँख से संसार को देखा है, वैसे ही शास्त्र को पुस्तक को देखा है। तो इससे यह चीजें सबकी बराबर हैं। अर्थात् देखने और सुनने की जानने की जो साधनों की क्षमता है वो इनके पास (सखायः) बराबर की है। लेकिन मुश्किल यह है कि जब हम विचार करते हैं तो यह बराबर लाभ नहीं उठा पाते। ये इनके साधन बिल्कुल एक जैसे होने पर भी प्राप्ति इनकी एक जैसी नहीं है। इसका एक ऐसा उदाहरण है- कोई तालाब है, कोई जलाशय है, उसके अन्दर प्रभूत मात्रा में जल होता है और उससे कोई कितना भी जल ले सकता है, लेकिन ऐसा होता नहीं है, क्योंकि जिसके पास जैसी

पात्रता हो, जैसा बर्तन हो तो उतना ही जल वो ले जा पाता है। जल का पर्याप्त होना एक अलग चीज है और जल का उपयोग करने का सामर्थ्य होना एक अलग बात है।

तो मन्त्र कहता है कि ज्ञान सब जगह है। गुरु जब उपदेश करता है तो वह अलग-अलग तरह से नहीं कहता है। एक प्रवचनकर्ता जब कोई उपदेश देता है तो वह अपने श्रोताओं के लिए अलग-अलग उपदेश नहीं देता है। सामने बैठे हुए सभी लोगों के लिए वह एक जैसा ही प्रवचन करता है। किन्तु जो बैठे हुए लोग हैं, उन प्रवचन का प्रभाव एक जैसा नहीं पड़ता है, एक जैसा प्रभाव दिखाई नहीं देता है। तो उस प्रवचन का एक जैसा प्रभाव न पड़ने के कारणों पर इस मन्त्र में विचार किया गया है, उस बात को समझाया गया है। इसलिए यहाँ एक शब्द कहा है- अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः।

सत्यार्थप्रकाश

सत्यार्थप्रकाश धार्मिक ज्ञान का भण्डार, विद्या सम्बन्धी खोज का कोष, वैदिक धर्म का जंगी मैगज़ीन है। जिसने एक बार इसे पूर्णतया समझकर पढ़ लिया, फिर सम्भव नहीं कि वह कभी वैदिक धर्म से दूर हटे। हम दावे से कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क को सत्यार्थप्रकाश बहुत-सी नवीन बातें दिखलाता है।

सत्यार्थप्रकाश मतमतान्तरों की अविद्या में सोये हुए पुस्तकों को जगाने का काम देता हुआ उनको मतमतान्तरों के आलस्य का त्याग कराकर वेद सूर्य के दर्शन के लिए पुरुषार्थी बना देता है।

सत्यार्थप्रकाश उस मनुष्य के समान है जो एक हाथ में ओषधि की बोतल और दूसरे हाथ में रोगी के लिए आरोग्यदायक भोजन लिये खड़ा हो।

-आर्यपथिक पं. लेखराम जी

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्म-जयन्ती शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में ५० प्रतिशत की छुट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये
विवाह पद्धति	२०
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०२
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०२
समाधी	१००
सामवेद शतक	३०
जिज्ञासा विमर्श	१००
इतिहास प्रदूषण	१००
इतिहास साक्षी	५०
वेदामृत	५०
सत्यासत्य निर्णय	२५
The Book of Prayer	35
Kashi Debate	20
A Critique of Swami Naryan Seet	20
An Examination of Vallabh Seet	20
Five Great Rituals of The Day	20
Bhramaccheden	25
Bhranti Nivarana	35
Atmakatha	20
Gokarunanidhi	12
Dayanand Interparetation of Vedas	05
संध्या सुरभि कलेण्डर	३५
महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ कलेण्डर	२५
The Pre Islamic Religious of Arabia	20
वेदमाता	१००
शंका समाधान	७०
ईश्वर	१५०
नवयुग की आहट	६०
वैदिक इस्लाम	१०
पं. आत्माराम अमृतसरी	१००
इतिहास बोल पड़ा	१००
मृत्यु सूक्त	२००
सत्यार्थ सुधा	१५०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-

दूरभाष-0145-2460120, चलभाष- 7878303382

वैदिक राष्ट्र का स्वरूप एवं तात्त्विक पर्यालोचन

डॉ. आशुतोष पारीक

सारांश : राष्ट्र के विविध सन्दर्भों में कहीं जाति की महत्ता तो कहीं आर्थिक स्वार्थों की तत्परता, कहीं सामाजिक राग-द्वेष की प्रचुरता तो कहीं किसी राजपरिवार की महत्ता को हावी होते देखा जाता है। वैदिक राष्ट्र का स्वरूप और उसकी शक्ति इन सभी संकुचित विचारों के त्याग का परिचय कराती है। वैदिक राष्ट्र के तात्त्विक चिन्तन से हम वर्तमान युग में भी कैसे राष्ट्र को अपने अस्तित्व, अधिकार और कर्त्तव्य का आधार बनाना चाहते हैं, इसका उचित निदर्शन प्राप्त होता है। अतः आइए, वैदिक राष्ट्र के स्वरूप को जानें और मानवीयता के सच्चे पथप्रदर्शक के रूप में "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सद्भाव को पनपने का सुदृढ़ आधार प्रदान करें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे
राजन्यः शूर इषव्योऽतीव्याधी
महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे
निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।[१]

राष्ट्र के माहात्म्य को प्रतिपादित करता यह यजुर्वेद का मन्त्र उदात्त विचारों का सम्प्रेष्ण करता है। हम जानते हैं कि सम्पूर्ण विद्याओं और प्रत्ययों का मूल वेद है। स्वामी दयानन्द के मत में "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"[२] अतः हमें जब भी किसी प्रत्यय पर विचार करना होता है तो हम उसका मूल वेद में खोजने का प्रयत्न करते हैं। हमारा सनातन राष्ट्रीय चिन्तन भी वेदमूलक है। समग्र राष्ट्रीय चिन्तन ब्रह्मज्ञान में समाहित है। वेद ब्रह्म है, ब्रह्म बल है, बल राष्ट्र है, जिसकी प्रधान रूप से चार शक्तियाँ हैं- १. ज्ञानशक्ति, २. रक्षकशक्ति, ३. पोषकशक्ति एवं ४. धारकशक्ति। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।[३]

अर्थात् उस विराट् पुरुष से ही चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई, जो राष्ट्र के अंग थे। यह मन्त्र शरीर, समाज, राष्ट्र और भूमण्डल तथा विश्व मण्डल के राष्ट्र स्वरूप में समान रूप से घटित है। अथर्ववेद में राष्ट्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है-

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तस्मै देवा उपसंनमन्तु।।[४]

अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त में राष्ट्र को उच्छिष्ट में निहित बताया गया है।[५] 'राजृ दीप्तौ' धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय से राष्ट्र शब्द निष्पन्न हुआ है। कोशों में राष्ट्र का अर्थ राज्य, देश, साम्राज्य, जिला, प्रदेश, दुर्ग, बल आदि किये गये हैं[६] किन्तु जिस राष्ट्र की अवधारणा वेद में है, वह सम्पूर्ण त्रिलोक है, वह अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत अर्थ का प्रतिपादक है। राष्ट्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में वाक् सूक्त के अन्तर्गत मिलता है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराणादि में राष्ट्र की सीमा व स्वरूप का चिन्तन विस्तृत रूप से अभिव्यक्त हुआ है। हमारा वर्तमान जगत् राष्ट्र के आधिभौतिक स्वरूप को ही महत्त्व प्रदान कर पा रहा है किन्तु इसके अध्यात्म व अधिदैव स्वरूप का दर्शन कराने वाले मन्त्रों का भी निदर्शन वर्तमान समाज के लिए उपादेय होगा। यजुर्वेद के अध्याय २० में राज्य के आध्यात्मिक स्वरूप का इस प्रकार वर्णन मिलता है-

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्।।
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदाऽङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः।।
बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।

आत्मा क्षत्रमुरो मम।।
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
उरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि।।[७]

प्रस्तुत मंत्र में पृष्ठ भाग को राष्ट्र कहा गया है जो समस्त जीवन का सुदृढ़ आधार है। अधिदैवत राष्ट्र के स्वरूप का निदर्शन कराता हुआ वेद कहता है–

राज्यसि प्राची। सम्राडसि प्रतीची।
स्वराडस्युदीची। अधिपत्न्यसि बृहती।।[८]

इसी प्रकार अथर्ववेद में कहा गया है कि अधिदैव रूप से वर्तमान राष्ट्र को सविता, अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, मित्रावरूण आदि देवों द्वारा धारण किया जाता है। वरूण को राजा कहा गया है–

येन देवं सविस्तारं परि देवा धारयन्,
तेनैव ब्रह्मणस्पते परिराष्ट्राय धत्तन।
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवा बृहस्पतिः,
ध्रुवं इन्द्रश्चाङ्गिनश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।[९]

अथर्ववेद में राष्ट्रभृत् देवों को सूर्य के चारों ओर विचरण करते हुए बताया गया है।[१०] कहा गया है कि जो राष्ट्रीभूत देवता सूर्य के अभिमुख होकर गति करते हैं, वे सम्यक् ज्ञान, सुमन वाने रोहित राष्ट्र को धारण करें। अथर्ववेद के १३वें काण्ड में रोहित का सविस्तार वर्णन है। मन्त्रों में आया हुआ राष्ट्र शब्द व्यष्टि और समष्टि से संवलित व्यापक आधार को सूचित करता है। राष्ट्र के रक्षक के रूप में क्षत्र अथवा क्षत्रिय की नियुक्ति की गई है, जिसके कर्म आश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत नियन्त्रित किये गये हैं। अथर्ववेद के ब्रह्मचारी सूक्त में कहा गया है–

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।।

यहाँ ब्रह्मचर्य तप से तात्पर्य राष्ट्र के समग्र वृद्धिभाव से है तथा रक्ष् धातु संवरण, दान, व्यापन, हिंसा एवं रक्षा अर्थ वाली धातुओं का अर्थ ग्रहण किए हुए हैं। श्रीमद्भागवत में तेज, बल, धृति, शौर्य, तितिक्षा, औदार्य, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्य, ऐश्वर्य को क्षत्रप्रकृतियाँ कहा है।[११] इन्द्र को प्रधान योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है।[१२] यजुर्वेद में आपोदेवी को राष्ट्रदा कहा गया है।[१३] यजुर्वेद में सब कुछ यज्ञ से सम्पन्न होने की कामना है। राजा से सम्बन्धित आसन्दी, कुम्भी, सुरापानी आदि नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।[१४] अथर्ववेद में प्रजापति की पुत्रियों के रूप में सभा और समिति का उल्लेख[१५] किया गया है–

सभा च समितिच्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।।

सभा को नरिष्टा एवं सभा में बैठने वालों को सभासद् कहा गया है तथा सभी की वाणी को संयत होने की कामना की गई है–

सभा विदुषां समाजः।
सर्वत्र भान्ति देवा यत्र सा सभा यद्वा समानरूपेण यद्वा सह।
समितिः संयन्ति संगच्छन्ते युद्धाय अत्रेति समितिः।
संग्रामः। सा ग्रामीणजनसभेत्यर्थः।
यद्वा संग्रामनामानि यज्ञनामानि भवन्तीति
यास्केनोक्तत्वात् समितिः शब्देन यज्ञ उच्यते।।[१६]

वर्तमान में सभा, समिति शब्द मन्त्रिपरिषद् अर्थों में प्रयुक्त होता है। शासन कार्य में राजा को सब प्रकार से सहायता देने वाले मन्त्री होते हैं, राजा इन पर आश्रित रहता है, इनसे पथप्रदर्शन प्राप्त करता है, इन्हें रत्निन् भी कहा जाता है। ये राजकर्ता या राजकृत् कहे गये हैं।[१७] जो राजा के लिए उपदेशक, राजपुत्रों व प्रजाओं के लिए शिक्षक, विचारमन्त्र में ऋषि, समाज के लिए पथप्रदर्शक और योद्धाओं के लिए अग्रगामी होते हैं उन्हें पुरोहित कहा गया है–

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।।

अथर्ववेद में पौरोहित्य कर्म वर्णित है।[18] ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ करने वाले ब्राह्मण को पुरोहित बनाने के लिए कहा गया है। आधिभौतिक पुरोहित के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है–

अङ्गिनर्वाव पुरोहितः। पृथ्वी पुरोधाता, वायुर्वा
पुरोहितोऽन्तरिक्ष पुरोधाता,
आदित्यो वाव पुरोहितो द्यौः पुरोधाता।

एष वै पुरोहित य एवं वेद अथ स तिरोहितो य एवं न वेद।

पुर एनम् अग्रे दधाति दधति इति वा पुरोहितः।।[१९]

जिस प्रकार पृथ्वी आदि पिण्डों में पुरोहित अङ्गिन का प्राधान्य रहता है, उसी प्रकार राजा के यहाँ पुरोहित का प्रभाव रहता था। अङ्गिन, वायु, सूर्य का तीनों वेदों से क्रमशः सम्बन्ध है, अतः पुरोहित का वेदविद् होना आवश्यक माना गया है। बृहस्पति देवों के पुरोहित थे। तद्वत् मनुष्य राजा के पुरोहित होते हैं।

बृहस्पतिर्ह देवानां पुरोहितः तमन्वन्ये मनुष्य राज्ञां पुरोहिताः।।[२०]

यजुर्वेद में भी बृहस्पति को पुरोहित कहा गया है। ऐसे शासकों को क्रमिक उच्चता के अनुसार अधिराज, राजाधिराज, सम्राट्, स्वराट्, विराट्, सर्वराट् कहा गया है। अपने पद-गौरव प्रदर्शन के लिए राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि यज्ञ करते थे। इनका विस्तार से वर्णन ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में तत्कालीन शासनपद्धतियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यराज्यं महाराज्याधिपत्य... पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति, तदप्येष श्लोकोऽभिगीयते।।

इन सभी शब्दों के मूल में राज् धातु है जिसका अर्थ दीप्त होना है। सम्राज् अर्थात् सम्यक् रूप से प्रकाशित होना, विराट् अर्थात् विशेष या विविध रूप से प्रकाशित होना। प्रकाशमान सम्राज् स्वयं एक ओर अद्वैत है, स्वराज् अवस्था में वह अपने स्व को ही विषय बना लेता है और एक बाह्य इदं रूप में देखकर अहमस्मि का अनुभव करता है। यही स्व विराज् अवस्था में पहुँचकर वि में परिवर्तित हो जाता है, यही विराज् के स्थान पर विराजानि बन जाता है।

प्राकृतिक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौः के अधिपति क्रमशः अङ्गिन, वायु और आदित्य को माना गया है। सूर्य की त्रिलोकी रोदसी में सूर्य की प्रधानता है। सूर्य की अग्नि के अधीन उसी के विकास रूप से अन्तरिक्ष की अग्नि विद्युत् तथा पृथ्वी की अग्नि दोनों ही सूर्य से उत्पन्न हैं।

सूर्याप्रसूतावग्नी तु दृष्टौ मध्यमपार्थिवौ।।

इस प्रकार सूर्य ही सबका अधिपति नियामक स्वराट् है, सूर्य प्राण ही इन्द्र है, फलतः स्वराट् है, सूर्य की शक्ति ही ब्रह्माण्ड में शासन करती है। स्वयंभू एवं परमेष्ठी से ब्रह्म और विष्णु विराट् कहे गए हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक व्यवस्था के आधार पर भौम त्रिलोकी की व्यवस्था हुई। भौम स्वर्ग के अधिपति इन्द्र माने गये हैं, अतः हमारी राजा आदि अवधारणाएँ वैदिक हैं। राजा अपने राज्य में स्वतंत्र होता था किन्तु अन्य राजाओं के सम्बन्ध में वह सम्राट् के अधीन माना जाता था। इसी प्रकार सम्राट् भी स्वराट् के अधीन समझा जाता था। इन्द्र त्रिलोक के अधिष्ठाता थे, इसका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[२१] वरुण को भी राजा कहा गया है।[२२] वाक् सूक्त में परमेष्ठी मण्डल की अधिष्ठात्री आपो देवी स्वयं को राष्ट्री कहती है-

अहं राष्ट्री संगमनी।[२३]

वेदमन्त्रों में आए हुए ग्राम, ग्रामणी, विश्, विशांपति, जन, जनपद, गोप्ता आदि शब्दों को देखकर सम्पूर्ण राजतन्त्र को पाँच भागों में बाँटा गया है- १. गृह, २. कुल, ३. जन, ४. जनपद, ५. राष्ट्र। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों में आए हुए राष्ट्र, राष्ट्री, राष्ट्रभृत् आदि शब्द अपना व्यावक अर्थ रखते हैं। आध्यात्मिक और आधिदैविक राष्ट्र के स्वरूप को अभिमुख कर उससे समतुलित पार्थिव राष्ट्र-जीवन की योजना हमारे मनीषियों ने की है। राष्ट्र को ध्रुव रूप में स्थिर रखने के मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। वैदिक राष्ट्रचिन्तन अहं भाव से ऊपर उठकर सर्वात्मभाव वाला था। वहाँ सभी के हित की कामना है। उनके चिन्तन में सूक्ष्मता से स्थूलता और स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर गति-आगति करने वाले प्राणों की अभिव्यक्ति थी। अतः उन्होंने सबके कर्म, गति, वाणी, मन, चित्त

और संकल्प के एक होने की कामना की। ऋग्वेद के दसवें मण्डल का अन्तिम संज्ञान सूक्त इन्हीं भावों को प्रदर्शित करता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समाने वो हविषा जुहोमि।।[२४]

वर्तमान जगत् राष्ट्रवादी होने का तात्पर्य क्षेत्रविशेष अथवा वर्गविशेष के प्रति अपनी निष्ठा से समझने का प्रयास करता है, ऐसा राष्ट्रवाद स्वयं में अहं और अन्यों में विद्रोह के भावों को ही भर सकता है। अतः वैदिक राष्ट्र की व्यापक अवधारणा ही हमारे जीवन को सर्वांगपूर्ण बना सकेगी। मात्र स्वयं के हित की कामना न करते हुए सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना ही वैदिक राष्ट्र की वास्तविक अभिव्यक्ति है। जब वेद कहता है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' तो इसका तात्पर्य किसी वर्गविशेष से नहीं अपितु समस्त विश्व के कल्याण से है।

अतः आइये हम ऐसे ही राष्ट्रवाद के पोषक और प्रेरक बनें... विश्व के कल्याण में अपने हित को देखें... स्वार्थभाव से विमुख हो परमार्थ भाव का चिन्तन करें, तब ही हम राष्ट्र के स्वरूप और उसकी शक्ति से सच्चे अर्थों में अवगत हो सकेंगे।

- सह आचार्य, संस्कृत विभाग
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय
महाविद्यालय, अजमेर

सन्दर्भसूची–

१. यजुर्वेद २२.२२
२. आर्यसमाज का तीसरा नियम
३. ऋग्वेद १०.९०.१
४. अथर्ववेद १९.४२.१
५. पूर्ववत् ११.९.१७-१८
६. अमरकोश, मनुस्मृति ७.३२, ७.१०९, ९.२५४, १०.६१
७. यजुर्वेद २०.४-८
८. यजुर्वेद १५.१०,१२-१४
९. अथर्ववेद १३.१.२०, ६.८८.२
ऋग्वेद १०.१७३.५
१०. अथर्ववेद १३.१.३५
११. श्रीमद्भागवत ११.१७.१७
१२. ऋग्वेद ३१.१२.३
१३. यजुर्वेद १०.३
१४. यजुर्वेद १९.१६
१५. अथर्ववेद ७.१३.१, ८.११.८-११
१६. अथर्ववेद ७.१३.२१
१७. अथर्ववेद ३.५.७
१८. अथर्ववेद ३.१९.११
१९. ऐतरेयब्राह्मण ८.५.१
२०. ऐतरेय ब्राह्मण ८.५.३
यजुर्वेद २०.११
२१. ऋग्वेद १०.८९.१०
२२. ऋग्वेद १.२५.५
२३. ऋग्वेद १०.१२५.३
२४. ऋग्वेद १०.१९१.३

सहायक ग्रन्थसूची–

१. ऋग्वेद भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
२. यजुर्वेद भाषा भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।
३. सामवेद भाष्य – ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
४. अथर्ववेद भाष्य – प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
५. मनुस्मृति – महर्षि मनु, सं. प्रो. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
७. सत्यार्थप्रकाश – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

बात बात में बात -१

- श्री धर्मेन्द्र जिज्ञासु , गांव सुनपेड, जिला फरीदाबाद,हरियाणा

१२ नवम्बर सन् २०२३ को आर्य प्रतिनिधि सभा तेलंगाना के सुल्तान बाजार हैदराबाद स्थित कार्यालय में एक बहुत ही तपस्वी आर्य सज्जन ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी से बातचीत का सौभाग्य मिला। उन्होंने बताया कि उनके पूर्वज बांसवाड़ा राजस्थान के थे। वहां से वह उत्तर प्रदेश तथा फिर हैदराबाद आए।

ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी का जन्म सन १९३४ में हैदराबाद में हुआ। सन १९५० में आपने मैट्रिक की, फौज में भर्ती हुए। सन १९९२ में हिंदी पंडित के पद से रिटायर हुए।

आपने हैदराबाद के गैरीबाल्डी पंडित नरेन्द्र जी और शास्त्रार्थ महारथी श्री रामचन्द्र देहलवी जी के कई अनूठे और गौरवशाली संस्मरण सुनाए।

प्रस्तुत हैं उनके कुछ संस्मरण -

१. आर्य समाजी आपस में क्यों लड़ते हैं

एक शास्त्रार्थ में एक मौलाना ने श्री रामचन्द्र देहलवी जी से कहा कि आर्य समाजियों में यह बुराई है कि वे आपस में लड़ते रहते हैं । तो इसका उत्तर देते हुए श्री देहलवी जी ने कहा कि देखो जब दंगल होता है तो दंगल में पहलवान ही कुश्ती लड़ते हैं। निर्बल कमजोरों को उसमें कोई लड़ने को नहीं बुलाता। पहलवान लड़ते हैं और जीतता भी कोई पहलवान है। तो ऐसे ही आर्य समाज बलवानों का संगठन है। आर्य समाजी सिद्धान्तों के लिए लड़ते हैं, सिद्धान्तों पर लड़ते हैं, सिद्धान्तों के व्यवहार में अमल लाने या न लाने पर लड़ते हैं।

२. अब किसका जमाना है -श्री राम का, हजरत मोहम्मद का या महर्षि दयानन्द का

एक मौलाना और श्री रामचन्द्र देहलवी जी के मध्य शास्त्रार्थ हो रहा था। मौलाना ने शास्त्रार्थ में श्री रामचन्द्र देहलवी जी से कहा कि राम जी को हुए अब नौ लाख साल हो चुके। अब उनका जमाना समाप्त हो गया। राम शब्द के अंत म आता है। म अर्थात मोहम्मद। अब मोहम्मद का जमाना है।

इस पर शास्त्रार्थ महारथी श्री रामचन्द्र देहलवी जी ने उत्तर दिया- मौलाना जी, अब उनका भी जमाना समाप्त हो गया क्योंकि मोहम्मद के अंत में द आता है। अब दयानन्द का जमाना है और दयानन्द के शुरू में भी द है और आखिर में भी द है अर्थात दयानन्द का जमाना अब कभी समाप्त नहीं होगा। इस पर मौलाना निरुत्तर हो गया।

३. बुरे कर्म का बुरा नतीजा

महर्षि दयानन्द जी का ३० अक्टूबर सन १८८३ को अजमेर में बलिदान हुआ । नन्ही जान ने उनको दूध में संखिया विष दिलवाया था। जब स्वामी जी का दाह संस्कार हुआ तो नन्ही जान को लकवा मार गया तथा सन् १९०९ ईस्वी तक अर्थात २६ साल तक वह बीमारी से ग्रस्त रही और तड़प तड़प कर मरी। उसके मरने के बाद उसकी लाखों की संपत्ति बाद में सरकार ने अधिगत कर ली । इससे यही साबित हुआ कि बुरे कर्म का बुरा नतीजा होता है। किये गए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

४. विचित्र मतभेद -विचित्र विश्वसनीयता

आज हम जिसे आर्य प्रतिनिधि सभा तेलंगाना कहते हैं, देश की आजादी से पहले इसको आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण कहा जाता था। ठाकुर उमराव सिंह जी उस समय पुलिस अधिकारी होते थे। हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में १९३९ में उन्होंने इस्तीफा दे दिया । प्रतिनिधि सभा के सदस्य थे। आज प्रतिनिधि सभा के भवन से लेकर राजपूत सभा तक जितनी बिल्डिंग है, उन सब का आधिपत्य उन्होंने प्रतिनिधि सभा को दिलवाया था।

पंडित नरेन्द्र जी एवं ठाकुर उमराव सिंह जी परस्पर कटु आलोचना करते थे जिसको देखकर लोग समझते

थे कि इनमें बड़ी शत्रुता है। मतभेद सैद्धान्तिक था, कार्य शैली पर था, पर मनभेद नहीं था। इसका प्रमाण यह है कि पंडित नरेन्द्र जी जब भी हैदराबाद से बाहर जाते थे तो अपने कमरे की चाबी उमराव जी को देकर जाते थे । इसी प्रकार जब ठाकुर उमराव सिंह जी बाहर जाते थे तो वह भी अपने कमरे की चाबी पंडित नरेन्द्र जी को देकर के जाते थे। यह उस समय के आर्यों के व्यवहार की उज्ज्वलता और महानता है।

५. पंडित नरेन्द्र जी का अनुपम त्याग

पंडित नरेन्द्र जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा सुल्तान बाजार में प्रथम स्थल पर अपने पिताजी की याद में ५०१ से कमरा बनवाया था और उसमें रहने के लिए वह १५ मासिक किराया भी देते थे और बाकायदा स्टाम्प पेपर पर किराया नामा लिखा गया था। जिसमें बहुत सारी शर्तें लिखी गई थी। यह आर्य समाज के इतिहास का एक बहुत उज्जवल अध्याय है कि पंडित नरेन्द्र जिन्होंने पूरा जीवन आर्य समाज को समर्पित कर दिया था, आजीवन ब्रह्मचारी रहे गृहस्थी नहीं बसाई। घर बार छोड़ दिया। आर्य सत्याग्रह में हैदराबाद में निजाम के खिलाफ जान हथेली पर लेकर के लेख लिखे, मनानूर का काला पानी झेला और आजीवन आर्य समाज को समर्पित रहे। उन्होंने खुद कमरा बनवाया और इस कमरे में वह रहने का किराया भी सभा को देते थे। ऐसा महान उदाहरण किसी भी समाज में भी ढूंढे से नहीं मिलेगा। यह किरायानामा रिकॉर्ड में उपलब्ध है।

६. पंडित नरेन्द्र जी की सरलता और महानता

एक बार की बात है महाराष्ट्र के कुछ लोग आए थे। उनमें से एक व्यक्ति बीमार था और उसका इलाज यहां हैदराबाद में होना था। उनके रहने खाने की व्यवस्था का प्रश्न था। पंडित जी ने उनकी व्यथा सुनकर के अपना कमरा व दालान रहने के लिए दे दिया तथा स्वयं यहां एक कमरे में नीचे फर्श पर सोते थे और उन सबके रहने खाने की पूर्ण व्यवस्था भी उन्होंने की। लगभग महीना डेढ़ महीना तक पंडित नरेंद्र जी ने इसी प्रकार समय व्यतीत किया। ऐसा महान व्यक्तित्व था उनका।

७. पंडित नरेन्द्र जी के भाषण की विशेषता

पंडित नरेन्द्र जी के भाषण की एक विशेषता थी। जब हिंदी में भाषण देते थे तो एक भी शब्द उर्दू फारसी का नहीं बोलते थे और इसी प्रकार जब उर्दू में भाषण देते थे तो उसमें हिंदी का कोई वाक्य नहीं बोलते थे।

८ . शोला बयानी पर दरिया रवानी

हैदराबाद में बहादुर यार जंग बहुत बड़े वक्ता के रूप में माना जाता था। वह तब्लीग का कार्य करवाता था और धारावाहिक उर्दू बोलता था। उनके भाषण को सुनकर मुस्लिम जनता में जोश उबल पड़ता था। उनको जनता शोला बयानी कहती थी अर्थात् आग उगलने वाला भाषण करने वाला और जिस जगह बहादुर यार जंग का भाषण होता था, उसके अगले ही दिन वहां पर पंडित नरेन्द्र जी का भी भाषण होता था और लोग कहा करते थे की बहादुर यार जंग की शोला बयानी को पंडित नरेन्द्र जी की दरिया रवानी ने बुझा दिया अर्थात् बहादुरयार जंग के आग उगलने वाले भाषण को पंडित नरेंद्र जी अपने भाषण की ठंडक से बुझा देते थे। ऐसे बेमिसाल वक्ता थे पंडित नरेन्द्र जी।

यह पंडित नरेन्द्र जी की हिम्मत थी की रजाकारों के जमाने में उन्होंने लिखा कि पूरी दुनिया में हैदराबाद राज्य सबसे बड़ा जेल खाना है।

ऐसा लिखने के लिए , बोलने के लिए जान हथेली पर रखनी पड़ती है। यह हर किसी के बस की बात नहीं। जीत उसी की है जो इसके लिए सदैव तैयार है।

इसीलिए कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफ़िर ने लिखा था –

बात बातों से हरगिज़ बनेगी नहीं।
जान पर खेल जाओ, बात की बात है।।

– धर्मेन्द्र जिज्ञासु, हैदराबाद

ऋषिवर की सत्यनिष्ठा

- रामनिवास 'गुणग्राहक'

भारतीय ज्ञान-परम्परा में सत्य और धर्म को एक ही माना जाता है। महर्षि मनु- 'नास्ति सत्यात् परो धर्मः' की घोषणा करते हैं तो महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण में- ''यो ह वै धर्मः सत्यं वै तत् सत्यं वदन्त प्राहुः धर्मं वदतीति'' (१४.४.३.२६) लिखकर सत्य को धर्म और धर्म को सत्य मान रहे हैं। इतना ही नहीं याज्ञवल्क्य तो सत्य बोलने का सुफल भी बता रहे हैं। ''स यः सत्यं वदति यथाग्निं समिद्धं तं घृतेन अभिषिञ्यत् एवं है नं स उद्दीपपति। तस्य भूपो भूयः तेजो भवि श्व श्व श्रेयान् भवति।'' (२.२.२.१९) अर्थात् जो सत्य बोलता है, जैसे अग्नि पर घी छिड़कने से वह अग्नि उद्दीप्त होकर ऊपर उठता है, वैसे ही सत्यवक्ता का तेज उद्दीप्त होता है और प्रतिदिन उसका कल्याण ही होता है। हमें सामान्य विद्वानों के ग्रन्थों की अपेक्षा ऋषि-मुनियों के ग्रन्थ क्यों पढ़ने चाहिएं? क्योंकि उनके ग्रन्थों के पढ़ने से हमें हर विषय का यथार्थ, गम्भीर और व्यापक ज्ञान-विज्ञान होता है। भाग्यशाली वो पाठक हैं, जो साक्षात् दृष्टा ऋषियों के वचनों पर भरोसा करके उनके अनुसार आचरण करते हैं। लगे हाथों झूठ का फल भी जान लेना ठीक रहेगा। प्रश्नोपनिषद् में लिखा है- ''समूलो वा एष परिशुष्यति यो अनृतं अभिवदति।'' (६.१) अर्थात् जो झूठ बोलता है, वह समूल सूख जाता है। भावना शून्य संवेदना शून्य, हृदयहीन, निष्ठुर, निर्मम और निर्दयी हो जाता है। सुधी पाठक स्वयं तय कर लें कि उन्हें कैसा जीवन बनाना है। इसीलिये वैदिक भक्ति परमेश्वर से- 'अनृतात् सत्यं उपैमि' की प्रार्थना करता है कि मैं झूठ से पृथक् होकर सत्य की ही उपासना करूँ, सत्यशील बनूँ, सत्यनिष्ठ बनूँ।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की सत्यनिष्ठा असन्दिग्ध है, अनन्य है। महर्षि की दृष्टि में तो- ''मनुष्य जनम का होना सत्य-असत्य का निर्णय करने कराने के लिए है।'' उनका मानना है- ''सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी (उपाय) मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।'' वे अपने बारे में लिखते हैं- ''मैं तो अपना तन-मन-धन सब कुछ सत्य के ही प्रकाशनार्थ समर्पण कर चुका।'' आर्यो! सुधी पाठकों हमारा पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आखिर क्यों होना चाहिए? संसार के हर अच्छे और सच्चे विद्वान् का उपदेश या लेखन इसीलिए होता है कि श्रोता और पाठक उसे पढ़-सुन कर अपने जीवन को अच्छा और सच्चा बनाने की प्रेरणा व शक्ति प्राप्त करें। चाहे हमारे मन-मस्तिष्क में यह प्रधानता से दिखे या न दिखे, मगर हर पाठक व श्रोता के अन्तर्हृदय में पढ़ने-सुनने के मूल में जीवन को अच्छा-सच्चा बनाने की भावना ही काम कर रही होती है। मैं अपनी बात करूं तो मैं तो विषय और शीर्षक से लेकर हर शब्द तक का चयन इसी भावना से करता हूँ और प्रवचन-उपदेश में भी यही सोचकर बोलता हूँ कि पढ़ने-सुनने वालों के हृदय में दोषों-दुर्गुणों से ऊपर उठकर सत्य धर्म को स्वीकारने की भावना बलवती हो। मेरे पाठकों के फोन भी इस विषय में बहुधा आते रहते हैं तो मुझ लगता है मेरे हृदय की तरंगों ने किसी के हृदय को तो छुआ है। महर्षि दयानन्द की सत्यनिष्ठा और सत्य के प्रति उनके अटूट समर्पण को जानकर हम आर्यों के हृदय में भी सत्यशील होने की भावना जगे, हम सत्यशील बनने के लिए सच्चे मन से प्रयत्नशील हों। सत्य के लिए अपने मन-मस्तिष्क के खिड़की-द्वार खुले रखें, वाणी द्वारा सत्य कहने का सामर्थ्य-आत्मबल हम में उत्पन्न हो, यही मेरी भावना है, यही भावना पाठकों की भी होगी तो लिखना-पढ़ना सफल और सार्थक हो जाएगा।

वेद में बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है- 'अश्रद्धां अनृते दधात् श्रद्धा सत्ये प्रजापतिः' उस प्रजापति परमात्मा ने

हम सबके हृदय में सत्य के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा और असत्य के प्रति स्वाभाविक अश्रद्धा दे रखी है। परमात्मा ने हमारा स्वभाव सत्य के प्रति श्रद्धालु बनाया है, ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द तक सब ऋषि-मुनियों ने जो लिखा है, वह हमें सत्यशील बनाने के लिए ही लिखा है। हम ही अभागे हैं कि सब कुछ जानकर सबकुछ मान कर भी सत्य से कहीं अधिक असत्य को लाभदायक और सुखद मानकर जीवन को दु:खों से भर कर दुर्गति में धकेलते रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि सत्य कठोर होता है, यह ठीक नहीं है। अगर हमने अपने हृदय की प्रभु-प्रदत्त स्वाभाविक सत्यशीलता के स्रोत को स्वार्थ व संकीर्णता के पत्थरों से ढंक रखा है, जीवन में प्रतिपल और लम्बे काल तक झूठ व झूठ के सहचर छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, धोखेबाजी व दोगलेपन से ही काम चलाया है तो सत्य का प्रवेश अटपटा और अपरिचित जैसा ही लगेगा। हम कभी किसी सत्यनिष्ठ पुरुष के पास जाएं, उससे सत्य की महिमा की जानकारी लें तो हृदय कहेगा कि उनके लिए सत्य जीवन-मरण का प्रश्न है। क्या महर्षि दयानन्द ने जीवन में जितना वैर-विरोध सहन करना पड़ा, जितने दु:ख-कष्ट, घात-प्रतिघात झेलने पड़े, वे सब केवल सत्य बोलने के ही कारण। मगर क्या यह सब सहते हुए उन्होंने क्षण भर को यह सोचा कि लोग यही चाहते हैं तो यही सही? उनके हृदय में अटल भरोसा था कि जगत् के लिए जगत् पिता की उपेक्षा करना संसार का सबसे बड़ा घाटे का सौदा है, क्योंकि हमारे हृदय में सत्य दबा-कुचला पड़ा है, अपमानित-उपेक्षित हुआ पड़ा है। ऐसा निर्बल-निसत्व सत्य भला परमात्मा की अनुभूति और न्याय-व्यवस्था के दर्शन हमें कैसे करा सकता है? अपने सद्गुणों, सद्विचारों, सद्भावों का सम्मान करके तो देखो। इन्हें व्यवहार में धरातल पर सक्रिय होने का अवसर देकर तो देखो। संकीर्ण स्वार्थ से आगे बढ़कर परोपकार-परमार्थ के रास्ते पर एक-दो कदम चलो तो सही। फिर देखना हमारे हृदय में परमात्मा की कृपा-करुणा और वात्सल्यता कैसी झमाझम बरसती है। फिर देखना हृदय की पुण्यभूमि पर पावनता का प्रकाश कैसे परमात्मा की अनुभूति को अलोकित करता है। तब सत्य की महिमा जानने के लिए अधिक कुछ करने-कराने की आवश्यकता ही न रहेगी। बस एक बार सत्य का सम्मान करना सीख लो।

आर्यसमाज से जुड़ा हुआ हर व्यक्ति, अगर वो सत्य का सम्मान करना नहीं सीखता। सन्ध्या-स्वाध्याय व सत्संग के द्वारा अपने हृदयस्थ, प्रभु-प्रदत्त सत्य के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा का सम्पोषण नहीं करता, वह संसार का सबसे अभागा व्यक्ति है। न, न बुरा मत मानना, यह मैं यूं ही नहीं लिख रहा हूँ। आर्यसमाज एक ऐसा स्थान है, जहाँ आत्म-कल्याण के सब साधन सहज-सुलभ हैं। ईश्वर की पवित्र वेदवाणी अपने सच्चे स्वरूप में यहाँ है। उसे अपने जीवन मे जीकर साकार करनेवाला संसार का सर्वश्रेष्ठ आदर्श महर्षि दयानन्द के रूप में यहाँ है। आत्म-कल्याण के पथ पर चलने वाले ऋषि-मुनियों का अनुभव सिद्ध ज्ञान-विज्ञान उनके ग्रन्थों के रूप में आर्यसमाज में है। आत्म-कल्याण की व्यावहारिक कार्य योजना-'पंच महायज्ञों' के रूप में हमारे पास है। सत्य-धर्म और समाज सेवा के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वो पहली दूसरी पीढ़ी के सच्चे आर्यों का सजीव इतिहास जीवन ज्योति के रूप में आर्यसमाज में है। कोई बताये तो सही कि आत्मकल्याण, जीवन निर्माण के लिए ऐसा क्या है, जो आर्यसमाज में नहीं है? सब कुछ पाकर जीवन सुधार के लिए आत्म कल्याण के लिए कुछ भी न कर पाना, आत्मोन्नति के पथ पर कदम न बढ़ा पाना सबसे बड़ा दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहा जाएगा? हम अपने को अभागे नहीं तो क्या कहें? अपनी दुर्बलता का भाव तो होना ही चाहिए। हम क्या कर सकते हैं और क्या कर रहे हैं, यह सोचे बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं। मैंने कहीं पढ़ा था जो व्यक्ति किसी दौड़ की प्रतियोगिता में भाग लेने की सामर्थ्य रखता हो, वह अगर बच्चों की

तरह घुटनों के बल चले तो उसके अपने ही लोग, जो उसका हित भला चाहते हैं, वो उसकी सामर्थ्य को धिक्कारे बिना नहीं रह सकेंगे। आत्म-कल्याण की सब सामग्री सुविधा और संसाधन पाकर भी जो पद-प्रतिष्ठा, मंच, माला के प्रपंच में पड़कर अपना व दूसरे साधु स्वभाव के आर्यजनों का पथ अवरुद्ध कर रहो हो। जो महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा जीवन तपाकर बहायी गई वेद रूपी ज्ञान गंगा के स्रोत रूपी आर्यसमाजों के पदों पर पत्थर की भाँति पड़े हों, उस ज्ञान गंगा को खुलकर नहीं बहने दे रहे हों, उनको मानवता का शत्रु न कहा जाए तो क्या कहा जाए? उनके लिए किसी नीतिकार की एक पंक्ति अधिक ठीक रहेगी- 'तेषां दैवाभिशप्तानां सलितात् अग्नि उत्थित:' अर्थात् ऐसे भाग्यहीनों के लिए तो मानो पानी डालने से ही आग भड़क उठी हो। सामान्यत: अग्नि बुझाने के लिए पानी डाला जाता है, मगर पानी डालने से अग्नि और भड़क उठे तो यह परम दुर्भाग्य ही कहा जाएगा।

आर्यसमाज की स्थापना ऋषिवर ने संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए की थी। अब क्या यह भी समझाना पड़ेगा कि जो स्वयं की शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति नहीं कर सकता, वह दूसरों की भी नहीं कर सकता। ऋषि ने लिखा है न कि सत्योपदेश के बिना मनुष्य की उन्नति का अन्य कोई कारण नहीं है। सत्य ही मानवोन्नति का एकमात्र साधन है। पहले हम सत्य को स्वीकार करने का साहस करें, ब आगे बढ़कर समाज, राष्ट्र व विश्व कल्याण का अभियान चलाएँ। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रथम अपनी शारीरिक और आत्मिक उन्नति की, तत्पश्चात् वे समाज उन्नति में प्रवृत्त हुए। हम अपनी आत्मोन्नति का तो प्रयास भी नहीं करते 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का नारा ऐसे लगाते हैं, मानो हम स्वयं विश्व से पृथक् हों। सत्य की महत्ता पर चर्चा चल रही थी तो सत्य की एक विलक्षण परिभाषा पर दृष्टि डालते चलें- ''सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा।'' (नि. ३.१३) अर्थात् सत्य वह है जो सज्जनों के द्वारा ही फैलाया जा सकता है और सज्जनों में ही वह प्रभावकारी होता है। जिनके जीवन में सत्यनिष्ठा, सत्य-प्रतिष्ठा नहीं ऐसे हजारों-लाखों प्रचारक, उपदेशक, कथावाचक, धर्माचार्य और धर्मगुरु सब मिलकर इतना काम नहीं कर सकते, जितना अकेले सत्यनिष्ठ दयानन्द सरस्वती कर गये। जिनके जीवन में सत्य है ही नहीं, वे भला दूसरों के मन-मस्तिष्क में सत्य का अंकुर कैसे उगा सकते हैं? कण्ठ से निकली वाणी कानों तक जाकर निर्जीव हो जाती है तथा हृदय से उद्भूत वाणी हृदय तक की यात्रा कर पाती है। आर्यो! सत्य को स्वीकार करो, सत्यनिष्ठ बनो, इसी में हमारा और विश्व का कल्याण है। सत्य को लेकर मैंने कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं, उनका भी आनन्द लो-

सच ही कहो सच भी सहो, सच सर्वशक्तिमान है।
सच की सचाई क्या कहूँ, सच ही सखे भगवान् है।।

सच सरल है सच सुखद है, सच शुद्ध और पवित्र है।
सच समर्पित विश्वास है, सच का स्वभाव विचित्र है।।

सच धर्म है सच कर्म है, सच प्राणियों का प्राण है।
सच मान है सम्मान है, सच ज्ञान है विज्ञान है।।

सच सेतु है व्यवहार का परिवार का संसार का।
सच संगठन का सूत्र है, सच द्वार है उद्धार का।।

सच सद्गुणों का कोष है, सच सर्वदा निर्दोष है।
सच आत्मा की प्यास है, सच ही परम सन्तोष है।।

सच सफल है सच अटल हे, सच ही सदा कर्त्तव्य है।
सच मुक्ति-पथ है मनुज का सच से सुखद भवितव्य है।।

ग्राम सुरौता, भरतपुर, राज.

आचार्य की आवश्यकता

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय हेतु संस्कृत व्याकरण, उपनिषद्, दर्शन, संस्कृत साहित्य एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों/सिद्धान्तों का अध्यापन करा सके। ऐसे सुयोग्य वैदिक विद्वान्/आचार्य की आवश्यकता है। इच्छुक व्यक्ति निम्न दूरभाषों पर सम्पर्क करें।

ओम्मुनि	**कन्हैयालाल आर्य**
प्रधान	**मन्त्री**
९९५०९९९६७९	**९९१११९७०७३**

महर्षि दयानन्द की २००वीं जयन्ती के अवसर पर आयोजित दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १८, १९ व २० अक्टूबर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२४ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=०० रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२४ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नगद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**-७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित की जायेगी। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि/भूदेव उपाध्याय-७७४२२२९३२७

परमहंस परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के २००वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में

भव्य एवं दिव्य ऋषि मेला समारोह

कार्तिक कृष्ण १ से तृतीया सम्वत् २०८१ तदनुसार १८, १९, २० अक्टूबर २०२४

विराट् व्यक्तित्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की एकमात्र उत्तराधिकारिणी संस्था परोपकारिणी सभा, अजमेर एक भव्य एवं दिव्य समारोह का आयोजन कर रही है। इस अवसर पर कई सम्मेलनों (यथा गोरक्षा सम्मेलन, वेद प्रचार सम्मेलन, सोशल मीडिया और आर्यसमाज, स्त्री शिक्षा सम्मेलन, युवा सम्मेलन, गुरुकुल सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन) का आयोजन होगा।

कार्यक्रम स्थल- ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

यजुर्वेद पारायण यज्ञ- का आरम्भ सोमवार १४ अक्टूबर से होगा व इसकी पूर्णाहुति समापन समारोह के अन्तिम दिन २० अक्टूबर को प्रातः १० बजे होगी। इस यज्ञ के ब्रह्मा प्रो. कमलेश कुमार शास्त्री अहमदाबाद होंगे।

विशेष आकर्षण

१. इच्छुक व्यक्तियों को वानप्रस्थ एवं संन्यास की दीक्षा।
२. ऋषि के जीवन के ऊपर लेज़र शो।
३. ऋषि दयानन्द के जीवन पर प्रदर्शनियाँ।
४. संगठन का परिचय देने के लिए एक विशाल शोभा यात्रा।
५. वेद-कण्ठस्थीकरण की परीक्षा।
६. ऋषि दयानन्द के जीवन पर विशेष गोष्ठियाँ, नाटिकायें।
७. आर्य साहित्य एवं यज्ञादि के उपकरणों का विक्रय।
८. कार्यकर्त्ताओं तथा विद्वानों का सम्मान।

ऋषि लंगर- इस अवसर पर पधारने वाले श्रद्धालुओं के लिए पौष्टिक एवं स्वादिष्ट प्रातःराश तथा दोनों समय के भोजन की व्यवस्था परोपकारिणी सभा की ओर से होगी।

आवास-व्यवस्था- आप यदि समूह में रहना चाहेंगे तो ऋषि उद्यान तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न विद्यालयों, आर्यसमाजों एवं धर्मशालाओं में व्यवस्था की जायेगी। यदि आप अपने लिए अलग से कमरों की व्यवस्था करना चाहते हैं तो निम्न दूरभाषों पर कम से कम १५ दिन पूर्व सूचना दे दें ताकि होटलों में व्यवस्था की जा सके। आप अपने आने के लिए निम्नलिखित दूरभाष पर रजिस्ट्रेशन अवश्य करा लें ताकि आपके आवास में कोई कठिनाई न हो।

सम्पर्क सूत्र- १. श्री रमेशचन्द भाट - 9413356728, २. श्री वासुदेव आर्य-९४६०११२०९२, ३. श्री दिवाकर गुप्ता - 7878303382

आप से निवेदन है कि आप इस अवसर पर अवश्य पधारें। ऐसा अवसर आप के जीवन में दूसरी बार नहीं आयेगा तथा सभी जन अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकर्त्ताओं सहित पधारकर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें। महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा व उत्साह प्राप्त कर वेद धर्म के प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

इस महान् पर्व पर आर्यजगत् के अनेक प्रसिद्ध संन्यासी, मुनि, विद्वान्, विदुषी, भजनोपदेशक एवं राजनैतिक जगत् के कई महानुभाव पधार रहे हैं।

संन्यासी- १. स्वामी प्रणवानन्द, गुरुकुल गौतमनगर, देहली २. स्वामी डॉ. देवव्रत, संचालक सार्वदेशिक आर्यवीरदल ३. स्वामी ब्रह्ममुनि, महाराष्ट्र ४. स्वामी ऋतस्पति, गुरुकुल होशंगाबाद ५. स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक ६. स्वामी चिदानन्द सरस्वती, गुरुकुल निगम नीडम्, तेलंगाना ७. स्वामी विदेह योगी, कुरुक्षेत्र ८. स्वामी सच्चिदानन्द, राजस्थान ९. आचार्य विजयपाल, गुरुकुल झज्जर १०. आचार्य ऋषिपाल, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ।

आमन्त्रित राजनैतिक व्यक्तित्व- १. आचार्य देवव्रत, राज्यपाल गुजरात राज्य २. श्री भजनलाल शर्मा, मुख्यमन्त्री राजस्थान ३. श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत, केन्द्रीय संस्कृति मन्त्री ४. श्री वासुदेव देवनानी जी, अध्यक्ष विधानसभा राजस्थान ५. श्री घनश्याम तिवारी, राज्यसभा सांसद ६. श्रीमती अनिता भदेल, विधायक एवं पूर्व मन्त्री, अजमेर।

विद्वान् एवं विदुषी- १. प्रो. कमलेश शास्त्री, अहमदाबाद २. प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब ३. डॉ. रघुवीर

वेदालंकार, दिल्ली ४. डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, उ.प्र. ५. डॉ. रामप्रकाश वर्णी, एटा ६. डॉ. महेश विद्यालंकार, दिल्ली ७. पद्मश्री आचार्य सुकामा, हरियाणा ८. डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा, गुरुकुल शिवगंज ९. डॉ. प्रियम्वदा वेदभारती, नजीबाबाद १०. डॉ. धारणा याज्ञिकी, गुरुकुल शाहजहाँपुर ११. प्रो. नरेश कुमार धीमान, अजमेर १२. आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी, बिजनौर १३. डॉ. विनय विद्यालंकार, उत्तराखण्ड १४. आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक, होशंगाबाद १५. डॉ. कुलबीर छिकारा, सूचना आयुक्त, हरियाणा १६. डॉ. जगदेव विद्यालंकार, रोहतक १७. आचार्य जीववर्धन शास्त्री, जयपुर १८. श्री रामनिवास गुणग्राहक १९. डॉ. रामचन्द्र, कुरुक्षेत्र २०. आचार्य अंकित प्रभाकर, अजमेर।

आर्यनेता- श्री रामनिवास गुणग्राहक, श्री सुरेशचन्द्र आर्य, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा २. श्री प्रकाश आर्य, मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ३. श्री राजीव गुलाटी, चेयरमैन एम.डी.एच. ४. ठाकुर विक्रमसिंह, अध्यक्ष राष्ट्र निर्माण पार्टी ५. श्री धर्मपाल आर्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली ६. श्री विनय आर्य, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ७. श्री देवेन्द्रपाल आर्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. ८. श्री किशनलाल गहलोत, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान ९. डॉ. श्रीगोपाल बाहेती, प्रधान महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास, अजमेर १०. श्री जितेन्द्र भाटिया, आर्यवीरदल दिल्ली ११. श्री देशबन्धु आर्य, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा १२. श्री सतीश चड्ढा, महामन्त्री आर्य केन्द्रीय सभा देहली १३. श्री योगेश मुंजाल, प्रधान टंकारा स्मारक ट्रस्ट १४. श्री अजय सहगल, मन्त्री टंकारा स्मारक ट्रस्ट।

भजनोपदेशक - श्री दिनेश पथिक (पंजाब), श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य

सम्पूर्ण कार्यक्रम के स्वागताध्यक्ष के रूप में श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य,
चेयरमैन, जे. बी. एम. ग्रुप उपस्थित रहेंगे।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा ८० जी के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप आयकर मुक्त होगा। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। सहयोग हेतु निम्न खातों का प्रयोग करें। ऋषि लंगर हेतु आटा, चावल, दाल, चीनी, घी, तेल आदि सामग्री भी प्रदान कर सकते हैं।

खाताधारक का नाम : परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINISABHA AJMER)
बैंक का नाम : भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर, बैंक बचत खाता संख्या : 10158172715
IFSC - SBIN0031588 UPI ID : PROPKARNI@SBI

निवेदक - ओम्मुनि वानप्रस्थी (प्रधान) कन्हैयालाल आर्य (मन्त्री)

yono SBI
SBI Payments
MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI
SCAN & PAY
BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

डॉ. सुरेन्द्र कुमार- संरक्षक, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ. वेदपाल-संरक्षक एवं सम्पादक परोपकारी, श्री सज्जनसिंह कोठारी, सभा उपप्रधान, जयपुर, श्री दीनदयाल गुप्त, सभा उपप्रधान, श्री जयसिंह गहलोत, सभा उपप्रधान, जोधपुर, डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा, सभा संयुक्त मन्त्री, अजमेर, श्री लक्ष्मण जिज्ञासु, सभा कोषाध्यक्ष, नोयडा, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि, पुस्तकाध्यक्ष, गुरुकुल झज्जर, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार, अन्तरंग सदस्य, कुरुक्षेत्र, श्री वीरेन्द्र आर्य, अन्तरंग सदस्य, अजमेर।

अन्य ट्रस्टीगण- श्री शत्रुघ्न आर्य, श्री सुभाष नवाल, मुनि सत्यजित्, स्वामी विष्वङ् परिव्राजक, श्री विजयसिंह भाटी, श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, डॉ. योगानन्द शास्त्री, श्री सत्यानन्द आर्य।

आयोजक- परोपकारिणी सभा, अजमेर
(महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की एकमात्र उत्तराधिकारिणी संस्था)
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज.

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष** - 8890316961

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २११९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

0008000100067176

IFSC - PUNB0000800

UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें।

- मन्त्री

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

- कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

गुरुकुल का शुभारम्भ

दिनांक ०६-१०-२०२४ ऋषि उद्यान में महर्षि दयानन्द गुरुकुल का शुभारम्भ किया गया। इस अवसर पर गुरुकुल के नवनियुक्त आचार्य सत्यनिष्ठ जी ने गुरुकुल में प्रवेश हुये बच्चों की जानकारी दी। ब्रह्मचारी मनीष ने अष्टाध्यायी का एक अध्याय सुनाकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। ब्रह्मचारी भानु ने १० मिनट का वक्तव्य दिया। दो ब्रह्मचारियों ने मधुर भजन सुनाया।

आचार्य सत्यनिष्ठ जी ने कहा कि मैं इस गुरुकुल में रहते हुए विद्यार्थियों का निर्माण कर राष्ट्र का गौरव बढ़ाऊँगा। संस्था प्रधान श्री ओम्मुनि जी ने बताया कि बिना गुरुकुल आर्यसमाज का कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिये समाज की उन्नति के लिये गुरुकुल एवं उपदेशक महाविद्यालय होना आवश्यक है। टेलीफोन पर हुई वार्ता के दौरान सभा के उपप्रधान श्री दीनदयाल जी ने घोषणा की कि ऋषि उद्यानद के गुरुकुल एवं उपदेशक महाविद्यालय के लिये धन की कमी नहीं आयेगी।

ब्रह्मचारी मनीष की योग्यता व बुद्धिमत्ता को देखते हुए श्री सज्जनसिंह कोठारी सभा के वरिष्ठ उपप्रधान ने विद्यार्थी मनीष को गोद लिया और कहा चाहे जो खर्च हो इसको बड़ा विद्वान् बनायेंगे। इसका पूरा खर्च मैं वहन करुंगा। सभी ने करतल ध्वनि से कोठारी जी के संकल्प का स्वागत किया। वर्तमान में गुरुकुल में ६-७ विद्यार्थी प्रवेश ले चुके हैं।

आचार्य धर्मवीर स्मृति दिवस

दिनांक ०६-१०-२४ को परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान स्व. आचार्य धर्मवीर जी का स्मृति दिवस मनाया गया। स्मृति दिवस की अध्यक्षता राजस्थान सरकार के पूर्व लोकायुक्त एवं वर्तमान में परोपकारिणी सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री सज्जनसिंह कोठारी ने की। कार्यक्रम का संचालन परोपकारिणी सभा के सदस्य श्री वेदप्रकाश विद्यार्थी ने किया। मुख्य वक्ता के रूप में रोहतक से पधारे पूर्व प्राचार्य डॉ. जगदेव विद्यालंकार जी ने डॉ. धर्मवीर जी के साथ बिताये हुए क्षणों को स्मरण किया। वक्ता के रूप में डॉ. आशुतोष पारीक ने संस्कृत के महत्त्व को बताते हुए डॉ. धर्मवीर जी के संस्कृत प्रेम का वर्णन किया। परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री कन्हैयालाल जी आर्य डॉ. धर्मवीर जी के कुछ संस्मरण सुनाये। सभा प्रधान श्री ओम्मुनि जी ने डॉ. धर्मवीर जी के साथ बिताये हुए समय को स्मरण करते हुए डॉ. धर्मवीर जी को श्रद्धाञ्जलि दी। शान्तिपाठ के साथ कार्यवाही सम्पन्न हुई।

अग्निहोत्र

अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का होना सिद्ध है, और उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। सत्यार्थप्रकाश समु. १२

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वि जन्म शताब्दी समारोह की तैयारियों की समीक्षा करते अतिरिक्त जिला कलक्टर एवं ऋषि मेले के नोडल अधिकारी श्री गजेंद्र सिंह राठौड़। साथ में हैं परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य और विभिन्न सरकारी विभागों के अधिकारी।

सभा के विशेष सहयोगी रामगढ़ जैसलमेर निवासी श्री कमल भार्गव एवं श्री पीतांबर भार्गव सभा प्रधान श्री ओम् मुनि और श्री वासुदेव आर्य के साथ। गत दिनों ऋषि मेले की तैयारी को लेकर श्री ओम् मुनि ने उनसे भेंट की। भार्गव बंधुओ ने एक लाख इक्यावन हजार रुपए की दान राशि के साथ आयोजन में पूरा सहयोग देने भरोसा दिलाया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वि जन्म शताब्दी समारोह की तैयारियों की समीक्षा बैठक में उपस्थित विभिन्न विभागों के अधिकारी।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : १४-१५ अक्टूबर २०२४ आर.एन.आई. ३१५१/५१

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की

२००वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

ऋषि मेला

१८-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट

This document was created with the Win2PDF “print to PDF” printer available at
http://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

http://www.win2pdf.com/purchase/